मंजुल मयंक : व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व

बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी की

पी-एच० डी० उपाधि

हेतु प्रस्तुत शोध-प्रबन्ध

2007

पर्यवेक्षक

डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'

डी. लिट्

(अवकाश प्राप्त, उपाचार्य)

हिन्दी विभाग

पं० जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय,

बाँदा (उ०प्र०)

शोधकर्त्री

अमिता पाण्डेय

(एम०ए०, बी०एड०)

शोध-केन्द्र

परास्नातक हिन्दी विभाग

पं० जवाहर लाल नेहरू पोस्ट ग्रेजुएट कॉलेज, बाँदा (उ०प्र०)

समर्पण

प्रिय सुब्रता को.....

जिसे काल ने जिन्दगी के साथ

हँसने-खेलने नहीं दिया ।
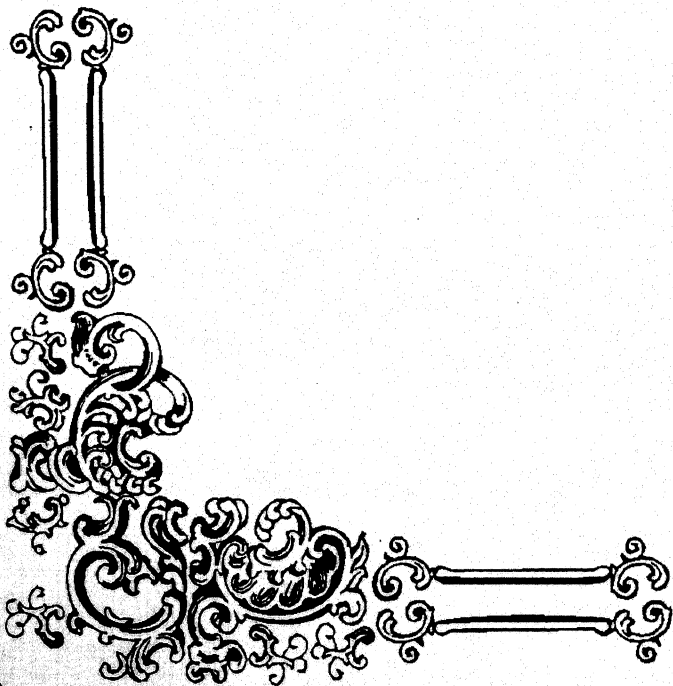
प्रमाण–पत्र

मैं प्रमाणित करता हूँ कि अमिता पाण्डेय ने बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय से हिन्दी विषय में पीएच0 डी0 उपाधि हेतु **"मंजुल मयंक : व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व"** नामक शोध–प्रबन्ध मेरे निर्देशन में शोध अध्यादेश–7 के अनुसार निर्धारित उपस्थिति देकर पूर्ण किया है।

इन्हें विश्वविद्यालय के पत्रांक बु0वि0/प्रशा./शोध/2005/1970–72 दिनांक 22.12.2004 के द्वारा विषय की स्वीकृति प्रदान की गयी थी।

अमिता पाण्डेय का यह शोध–प्रबन्ध मौलिक एवं साहित्यिक–अभिव्यक्तिगत–सौष्ठव से युक्त है।

अतएव मैं इसे मूल्यांकनार्थ बुन्देलखण्ड विश्वविद्यालय, झाँसी में प्रस्तुति हेतु संस्तुति करता हूँ।

अग्रसारित

दिनांक : 20.12.07

PRINCIPAL
Pt. J. N. P. G. COLLEGE
BANDA

पर्यवेक्षक

डॉ0 चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित'
डी.लिट्
(अवकाश प्राप्त, उपाचार्य)
हिन्दी विभाग
पं0 जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय,
बाँदा (उ0प्र0)

घोषणा पत्र

मैं **अमिता पाण्डेय** घोषणा करती हूँ कि मेरा यह शोधकार्य, जिसका विषय **"मंजुल मयंक : व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व"** है जो पूर्णतः मौलिक है। मेरी पूर्ण जानकारी और विश्वास के अनुसार इस विषय पर शोधकार्य अन्यत्र कहीं भी, किसी अन्य के द्वारा प्रस्तुत नहीं किया गया है।

दिनांक :- 20-12-2007

अमिता पाण्डेय

प्राक्कथन

पवित्र भारतवर्ष के दो महत्वपूर्ण प्रदेशों-उत्तर प्रदेश के दक्षिणी एवं मध्यप्रदेश के उत्तरी भू-भाग को सम्मिलित रूप से बुन्देलखण्ड कहा जाता है, पुण्य-सलिला यमुना, नर्मदा, चम्बल, टोंस, धसान, बेतवा एवं केन की धारायें, जिसके भू-भाग को सिंचित करती हुयी, सागर की ओर प्रवाहमान होती है, जहाँ विन्ध्य की लम्बी शृंखलायें अपने गर्भ में जाने कितने अनमोल रत्न छिपाये, जाने किस रहस्य के अनुसंधान में संलग्न हैं। इस महत्वपूर्ण भूखण्ड के सारस्वत-वैभव का एक कोहिनूर हैं- स्व० श्री गणेश प्रसाद खरे 'मंजुल मयंक'।

इतिहास के प्रत्येक काल-खण्ड के प्रति बुन्देलखण्ड का अपना अमिट देय रहा है एवं बुन्देल भूमि कला, साहित्य, संगीत एवं पुरातत्व की आदि भूमि रही है। आधुनिक काव्य में भी बुन्देलभूमि के स्वर्णकण मैथिलीशरण गुप्त, बाबू वृन्दावन लाल वर्मा, सियाराम शरण गुप्त, केदारनाथ अग्रवाल आदि साहित्य के सशक्त हस्तक्षर रहे हैं।

मंजुल मयंक बुन्देलखण्ड के हमीरपुर जनपद की बेतवा तट पर जन्में एक ऐसे प्रतिनिधि-गीतकार हैं, जिन्होंने 'रूपरागिनी', 'तन-मन की भाँवरे', 'जनता ही अजन्ता' है आदि ग्रन्थों की रचना की है तथा सैकड़ों गीत एवं नाटक प्रकाशित होने शेष हैं। मयंक जी ने न केवल बुन्देलखण्ड अंचल वरन् संपूर्ण हिन्दी जगत को ऐसे गीतों से अनुगुंजित किया है जो सामाजिक एवं राष्ट्रीय धारा में शोध की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। यह मेरे लिये अत्यन्त हर्ष का विषय है कि ऐसे व्यक्तित्व, कविधर्म ही जिनका सर्वस्व रहा है, पर प्रथम शोध का जिम्मेदारी भरा कार्य मुझे मिला। श्रद्धेय गुरूजी (ललित जी) के निर्देशन में विषय से कितना न्याय मेरे द्वारा हो सका है, यह समर्थ विद्वानों एवं सुदृढ़ पाठकों के मूल्यांकन का विषय है।

मेरे इस शोध-प्रबंध की रचना पूज्य आचार्यो, गुरुजनों, परिजनों, शुभेच्छुओं, प्रिय मित्रों के आशीष, स्नेह, शुभकामना एवं विभिन्न संस्थानों के सहयोग एवं प्रेरणा के फलस्वरूप

ही संभव हो सकी है। इन सभी के प्रति आभार प्रकट करना मैं अपना परम दायित्व समझती हूँ। सर्वप्रथम मैं अपने शोध पर्यवेक्षक पूज्य गुरुवर डॉ० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' जी के प्रति हार्दिक आभार व्यक्त करती हूँ जिनकी प्रेरणा निर्देश एवं कृपा से मुझे इस विषय पर शोध करने का सुअवसर प्राप्त हुआ। गुरुवर के बहुमूल्य विचारों , शोध अनुभवों और सुझावों से मेरा सदैव मार्गदर्शन होता रहा है। मुझे प्रतिक्षण उनका स्नेहपूर्ण प्रोत्साहन एवं अध्ययन संबंधी महत्वपूर्ण सहयोग प्राप्त होता रहा है। मुझे शोधकार्य में आपसे जो आत्मीय एवं अनुग्रहपूर्ण मार्गदर्शन मिला है, यह शोध-प्रबंध उसी का परिणाम है। मैं अपनी समस्त श्रद्धा एवं हार्दिक कृतज्ञता उनके श्री चरणों में निम्न पंक्तियों द्वारा अर्पित करती हूँ-

वदनं प्रसादसदनं, सदयं हृदयं, सुधामुचो वाचः।

करणं परोपकरणं, येषां केषां न ते वन्द्याः ।।

अर्थात जिनका मुख प्रसाद (प्रसन्नता) का स्थान है, जिनके हृदय में दया है, जिनकी वाणी मानों अमृत की वर्षा करती है, जो परोपकार में रत हैं, ऐसे पुरुष (गुरु) किसके वंदनीय नहीं हैं, अतः वह सभी के लिये वंदनीय हैं। इस प्रकार मैं गुरुवर के इस स्वरूप को प्रणाम करती हूँ।

मैं पं० जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय के प्राचार्य श्री नंदलाल शुक्ला को शत-शत नमन करती हूँ, जिनके प्रोत्साहन से यह कार्य सहज हुआ है। मैं राजकीय महिला महाविद्यालय , बाँदा के प्राचार्य डॉ० कमलाकांत शुक्ला का भी चरण वंदन करती हूँ जिन्होंने समय-समय पर महत्वपूर्ण सुझावों एवं शोध सामग्री संकलन में पूर्ण सहयोग कर शोध-कार्य को अपेक्षित समय में पूरा करने में सहयोग किया।

मैं हिन्दी साहित्य सम्मेलन, इलाहाबाद; केन्द्रीय पुस्तकालय, इलाहाबाद; नागरी प्रचारिणी सभा, बाँदा; पं० जे० एल० एन० पी० जी० कॉलेज, बाँदा; राजकीय महिला महाविद्यालय, बाँदा; के उन सभी पदाधिकारियों की आभारी हूँ जिन्होंने मुझे मेरे शोध की

सामग्री उपलब्ध करायी। मैं उन सभी विद्वानों की आभारी हूँ जिनकी रचनायें इस शोध-प्रबंध के प्रणयन में सहायक सिद्ध हुयी हैं।

मैं अपने माता-पिता, धर्ममाता एवं धर्मपिता की हृदय से ऋणी हूँ जिन्होंने मुझे इस योग्य बनाया कि कर्म के इस पायदान पर मैं खड़ी हो सकूं ; साथ ही अपने पति श्री अनन्त द्विवेदी, पुत्री अनन्या तथा पुत्र अरिजीत को भी धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने अपेक्षाओं के अनुरूप सहयोग कर इस कार्य के पूर्ण होने में मदद की। अंत में मैं डॉ० सुशील कुमार सिंह गौतम प्रवक्ता (प्राचीन इतिहास संस्कृति एवं पुरातत्व विभाग), सार्वजनिक पी०जी० कॉलेज, मुँगरा बादशाहपुर, जौनपुर, की हृदय से आभारी हूँ जिन्होंने मुझे शोध कार्य करने में कई स्तरों पर मेरी मदद की। मैं अपने शोध के टंकण हेतु श्री नीरज अग्रवाल 'अग्रवाल कम्प्यूटर्स' दुर्गा बाजार बाँदा को धन्यवाद देती हूँ जिन्होंने अल्प समय में बड़ी आत्मीयता के साथ इस कार्य को पूर्ण करने में सहयोग प्रदान किया।

शोध का विषय क्षेत्र विस्तृत है और शोधकर्ता के ज्ञान-क्षेत्र की सीमायें संकुचित होती हैं, अतः प्रस्तुत शोध-प्रबंध में कुछ कमियाँ रह जाना स्वाभाविक ही है। मेरा यह विनम्र प्रयास अपने पवित्र उद्देश्य की संपूर्ति में सफल हो- यही ईश्वर से मेरी कामना और अभ्यर्थना है। इस शोध-प्रबंध को अधिक सार्थक एवं उपयोगी बनाने के लिये विद्वानों एवं सुहृदजनों के रचनात्मक सुझाव मुझे सदैव सहर्ष स्वीकार्य हैं।

दिनांक 20-12-2007
दिन : ..गुरुवार...
तिथि : एकादशी..(शुक्लपक्ष)
संवत् : 2065......

Amita

(अमिता पाण्डेय)
हिन्दी विभाग
पं० जवाहर लाल नेहरू महाविद्यालय
बाँदा (उ०प्र०)

विषय सूची

अध्याय 1

अध्याय 1
व्यक्तित्त्व एवं कृतित्त्व परिचय
मंजुल मयंक जी का जीवन-परिचय

गीत साहित्य को एक नया उत्थान एवं शिखर देने वाले कवि मंजुल मयंक जी का जन्म 30 सितम्बर 1922 ई0 को उ0प्र0 के जनपद हमीरपुर मुख्यालय में हुआ था। इनके पितामह स्व0 श्री बैजनाथ प्रसाद खरे कौशाम्बी जिले के वर्तमान मुख्यालय मंझनपुर के (तत्कालीन इलाहाबाद जिले में) निवासी थे। आजीविका हेतु इन्हें हमीरपुर आना पड़ा और फिर यहीं वे स्थायी रूप से बस गये। पितामह के दो संताने थीं, जिनमें से स्व0 श्री महावीर प्रसाद खरे जी को कवि मयंक का पिता होने का गौरव प्राप्त है। स्व0 श्री महावीर प्रसाद खरे जी को कुल छः संताने प्राप्त हुईं। मयंक जी अपने भाई बहनों में सबसे बड़े थे। ज्येष्ठ पुत्र होने के नाते इनका लालन–पालन स्नेहपूर्ण वातावरण में हुआ। पिता की सहज इच्छा थी कि ये पढ़–लिखकर जानार्जन के साथ अर्थोपार्जन द्वारा उनका सहयोग करें। बचपन से ही मयंक जी की अभिरुचि संगीत, अभिनय, कला एवं शतरंज की तरफ रही। यद्यपि परिवार में काव्यमय वातावरण का अभाव था, फिर भी पिता की उर्दू जुबानी और हमीरपुर का काव्यमय वातावरण इनके भीतर काव्य–चेतना को जाग्रत करने में सहायक सिद्ध हो रहा था।

मयंक जी में सृजन का कौशल नैसर्गिक था। बचपन में वे रामलीला के पात्रों हेतु वार्ता एवं कविता लिखा करते थे, जब कोई नाटक खेला जाता था तो वे उसमें भाग लेते। कुशल अभिनेता एवं सुमधुर गायक के रूप में वे प्रारम्भ में ही चर्चा में आ गये थे। बाद में मयंक जी की प्रेरणा एवं प्रयास से ही हमीरपुर मे **'कलामन्दिर'** की स्थापना हुयी, जहाँ कई नाटक सफलतापूर्वक खेले गये। इस संस्था की स्थापना के बाद मयंक जी की प्रतिभा को खुलकर विकसित होने का अवसर मिला। यहाँ मयंक जी पात्रों का निर्देशन

करते तथा उन्हें नृत्य एवं भाव–भंगिमा की शिक्षा देते।

कला के प्रति बाल्यावस्था से ही समर्पित मयंक जी की प्रारम्भिक शिक्षा स्थानीय राजकीय हाईस्कूल हमीरपुर से प्रारम्भ हुयी। अपने पिता की इच्छा का सम्मान करते हुये मयंक जी ने 'उर्दू' का हाईस्कूल में प्रधान विषय के रूप में अध्ययन किया। वर्ष 1936 में चौदह वर्ष की उम्र में इन्होंने हाईस्कूल परीक्षा 'राजकीय हाईस्कूल, हमीरपुर' से उत्तीर्ण की। उर्दू के अध्ययन के बावजूद इनके हिन्दी प्रेम में किसी प्रकार की कमी नहीं आयी। उर्दू के अतिरिक्त हाईस्कूल में इन्होंने चित्रकला का भी अध्ययन किया जिसके परिणामस्वरूप वे आगे चलकर सुन्दर भाव–चित्रों का शब्दांकन अपने गीतों में कर सके। आगे चलकर पारिवारिक परिस्थितियों के कारण इनकी शिक्षा–दीक्षा विधिवत नहीं हो सकी। एक लम्बे अन्तराल के पश्चात व्यक्तिगत परीक्षार्थी के रूप में इन्हें इण्टरमीडिएट, बी0ए0 (1953) एवं एम0 ए0 (1955) की परीक्षायें उत्तीर्ण करनी पड़ी। आर्थिक भार के कारण इन्हें विभिन्न संस्थाओं में नौकरी करने हेतु बाध्य होना पड़ा। हाईस्कूल परीक्षा उत्तीर्ण करने के उपरान्त 1936 ई0 से 1940 ई0 तक हमीरपुर के कलेक्ट्रेट में लिपिक के पद पर, 1940 ई0 से 1946 ई0 तक बाँदा कलेक्ट्रेट में तथा 1946 से 1950 ई0 तक जिला परिषद, हमीरपुर में कार्य किया, परन्तु प्रशासन का दमघोंट वातावरण उनके अनुकूल नहीं था फलस्वरूप बी0ए0 करने के उपरान्त सर्वस्व ग्रासिनी कचहरी की नौकरी को हमेशा के लिये छोड़कर 1953 ई0 में 'नेशनल इण्टर कालेज, मौदहा' में अध्यापक हो गये, यहाँ 1955 ई0 तक अध्यापन किया, तत्पश्चात एक वर्ष तक रहमानिया इण्टर कॉलेज, मौदहा में एवं उसके बाद 1956 ई0 से विद्या मन्दिर इण्टर कॉलेज, हमीरपुर में अध्यापनरत रहे, जहाँ वे सेवानिवृत्त होने तक बने रहे। मयंक जी का निधन 30 सितम्बर 2007 को हुआ।[1]

मयंक जी का व्यक्तित्व अत्यन्त विराट एवं निर्मल था। उनके साथी अध्यापक,

परिचित एवं शिष्य उनके मृदु एवं विनम्र व्यवहार से अभिभूत रहते थे। उनके व्यक्तित्व की गंभीरता को उद्भासित करते हुये श्री चन्द्रिका प्रसाद सक्सेना 'कीर्ति' लिखते हैं, 'जिनको मयंक जी से मिलने का अवसर मिला होगा, उन्होंने उन्हें संसार से विरक्त सन्यासी जैसा गंभीर एवं एकांत चिन्तन में आत्मलीन अपने आप में खोया सा ही पाया होगा। मुक्त हास्य के लिये उनके मुख मण्डल पर तो जैसे दीर्घकाल से ही स्थान नहीं मिला, हाँ कभी-कभी हल्की सी मुस्कान-वह भी मित्रों के व्यंग्य विनोद के फलस्वरूप अवश्य देखी जा सकती है।''[2]

मयंक जी को हिन्दी, उर्दू, अंग्रेजी एवं संस्कृत भाषा का सम्यक ज्ञान था और वे चारो भाषाओं में कविता लिखने में समर्थ थे। उनकी कविता ''बापू! तुमको मेरा प्रणाम'' भाषा एवं शिल्प की दृष्टि से एक नवीन प्रयोग है जिसमें प्रत्येक पद अलग-अलग भाषा में लिखा गया है। मयंक जी की सृजन शक्ति नैसर्गिक थी एवं काफी कम उम्र में ही उन्होंने कवितायें लिखना शुरू कर दिया था। 20 वर्ष की उम्र में 1942 ई0 में पहली बार एक कवि सम्मेलन में उन्होंने अपनी रचना 'मंजुल-मंजुल', 'सुन्दर-सुन्दर' सुनायी थी।[3]

हिन्दी साहित्य में जिस समय मयंक जी का अविर्भाव हुआ, उस समय साहित्य में छायावाद के अन्त की घोषणा हो चुकी थी एवं राजनीतिक , सामाजिक तथा सांस्कृतिक परिवर्तनों सम्बन्धी घटनायें तेजी से घट रही थीं। भारतीय राष्ट्रीय आन्दोलन अपने चरम पर था। इसी समय द्वितीय विश्वयुद्ध भी प्रारम्भ हो गया। भारत में अंग्रेजी हुकूमत ने भारतीय जन प्रतिनिधियों से परामर्श लिये बिना ही अपने सहयोग में भारत को ले लिया। उनकी इस स्वेच्छाचारितो से नेताओं और शासन के बीच गहरे विरोध, द्वन्द और उलझन की स्थिति का अविर्भाव हुआ। पं0 नेहरू ने सभी राष्ट्रों के समक्ष यह घोषणा भी की कि हम ब्रिटेन और भारत का युद्ध नहीं लड़ रहे हैं, अपितु साम्राज्यवाद के विरोध में समाजवाद का युद्ध हमारा लक्ष्य है। द्वितीय विश्वयुद्ध के समय भारत में प्रान्तीय सरकारें

त्यागपत्र दे चुकी थीं और अंग्रेजी शासन ने वायसराय को सर्वाधिकार सम्पन्न कर दिया था। द्वितीय विश्वयुद्ध के दौरान मित्रराष्ट्रों की ओर से ब्रिटेन तथा अमेरिका ने 'अटलांटिक चार्टर' की घोषणा की कि 'प्रत्येक राष्ट्र को अपनी स्वेच्छानुकूल सरकार बनाने का अधिकार मिलना चाहिये' किन्तु तत्कालीन ब्रिटिश प्रधानमंत्री चर्चिल ने इस चार्टर का विरोध करके यह सिद्ध किया कि वे भारत को स्वतन्त्रता नहीं देना चाहते। कांग्रेस और ब्रिटिश शासन के द्वन्द के बीच ही जिन्ना की प्रेरणा एवं सक्रियता के फलस्वरूप मार्च 1940 में लाहौर में मुस्लिम लीग ने एक प्रस्ताव स्वीकृत कर अपनी स्वतन्त्र मांग अर्थात 'पाकिस्तान' की घोषणा की। ब्रिटिश सरकार ने भी अवसर का लाभ उठाते हुये 'अल्पसंख्यकों' की रक्षा के नारे लगाकर देश में भेदनीति को जन्म देते हुये 'स्वतन्त्रता' को टालने का यत्न जारी रखा। अगस्त 1942 ई० को महात्मा गाँधी ने कांग्रेस की महासमिति में बड़े ही जोरदार शब्दों में आजादी की वकालत की और प्रस्ताव पास हुआ कि "इस शासन का स्थायित्व भारत की प्रतिष्ठा को घटाता तथा दुर्बल बनाता है और अपनी रक्षा करने तथा विश्व के आदर्श की पूर्ति में सहयोग देने की उसकी शक्ति में क्रमिक ह्रास उत्पन्न करता है।"[4] इस प्रस्ताव में एशिया के अन्य परतन्त्र देशों की स्वतन्त्रता भी चाही गयी थी। राष्ट्रीय आन्दोलन करवटें बदलता रहा अन्ततः 15 अगस्त 1947 ई० को भारत आजाद हुआ और खुशी के इस मौके पर सांप्रदायिकता की भीषण होली भी जली। देश आजाद हुआ और आजादी के साथ ही समस्याओं का स्वरूप भी परिवर्तित हुआ। शासन ने समस्याओं को उदारता एवं शान्ति के साथ समझा। जनता के विश्वास को तौलते हुये धीरे-धीरे उसके मनोबल में परिवर्तन कर नयी घोषणाओं का प्रतिफलन होना आरंभ हुआ। सामाजिक उत्थान हेतु पंचवर्षीय योजनाओं का निर्माण हुआ। भारत के स्वतन्त्र होने के बाद से लेकर 27 मई 1965 ई० में पं० नेहरू की मृत्यु तक देश की लगाम उन्हीं के हाथों में ही बनी रही। इस दौरान देश में विखण्डन एवं

सृजन की प्रक्रिया एक साथ चलती रही। सन् 1951 ई0 में पंचवर्षीय योजनायें आरम्भ हुयीं। सन् 1952 में पहले आम चुनाव हुए एवं पहली प्रतिनिधि सरकार की स्थापना हुयी। सन् 1956 में राष्ट्रीय स्तर पर राज्य पुनर्गठन कानून पास हुआ और पुनर्गठन आयोग के अनुसार राज्यों का निर्माण हुआ। सन् 1962 में पड़ोसी देश चीन एवं 1965 एवं सन् 1971 में पाकिस्तान के आक्रमण की विभीषिका सही। 1965 ई0 में ही देश में भाषायी झगड़े भी हुये। इसी दौरान देश में भ्रष्टाचार का अंकुर भी फूट चुका था और धीरे–धीरे अपनी जड़ें गहराने लगा था।

सामाजिक मोर्चे पर भी पुनरुत्थान की प्रक्रिया चल रही थी। जातिवाद एवं सम्प्रदायवाद के विरूद्ध युद्धघोष हो चुका था। विभिन्न सरकारी एवं सहकारी प्रयास इस मोर्चे पर कार्यरत थे। गरीबी–उन्मूलन एवं स्त्रियोत्थान के विभिन्न प्रयास गतिमान हो रहे थे। वस्तुतः देश–निर्माण के बहुमुखी प्रयास प्रारम्भ हो चुके थे, या हो रहे थे। मयंक जी के काव्य में उपरोक्त सामाजिक एवं राजनीतिक परिस्थितियों का व्यापक प्रभाव दृष्टिगोचर होता है। मयंक जी हिन्दी साहित्य के उन कवियों एवं गीतकारों में शामिल थे जिन्होंने स्वतन्त्रता पूर्व एवं स्वतन्त्रता –पश्चात दोनों कालखण्डों को जिया था। स्वातन्त्रयोत्तर काल का आरम्भ रचनात्मक ढंग से नहीं हो सका। डॉ0 बैजनाथ बेनीपुरी लिखते हैं "भारतीयों ने स्वराज्य के सोपान को बड़ी मजबूती के साथ बनाया था और इसके प्रत्येक पग में अनगिनत व्यक्तियों ने अपने प्राणों की आहुति दी थी, पर देश में स्वतन्त्रता मिलने के बाद भी यहाँ खून की नदियाँ बही।"[5]

गाँधी जी की हत्या, सांप्रदायिक झगड़े, पुनर्वास व्यवस्था, जातीय–प्रान्तीय झगड़े आदि वह समस्यायें थीं जिनसे तत्कालीन समय में आशान्ति रही। आजादी के बाद लक्ष्यों की अप्राप्ति के कारण भारतीय जन–मानस की चेतना में निराशा और कुण्ठा की प्रवृत्ति जन्मी। व्यक्ति के नैतिक पक्ष के लोप और आर्थिक असन्तोष के कारण भारतीय

जन–मानस की स्थिति और संकीर्ण हो गयी। डॉ0 रामस्वरूप चतुर्वेदी ने इन स्थितियों का मूल्यांकन करते हुये लिखा है, "फलतः देश में बेइमानी, घूसखोरी, चोरबाजारी और इसी तरह के अन्य भ्रष्टाचारों का जोर बढ़ गया। साहित्यकार के लिये यह परिस्थिति बड़ी खतरनाक थी। विकृत आचरणों के बीच नये तथा स्वस्थ नैतिक मूल्यों का निर्माण उसे करना था। समाज के पतन से संपर्क में रहकर और किसी हद तक उससे प्रभावित भी होकर उसे नवीन आदर्श गढ़ने थे।"[6]

विवेच्य काल में मनुष्य जीवन के समक्ष बड़ा संकट प्रतिमानों के निर्धारण का था। वास्तव में नयी मर्यादाओं के उदय के समय ऐसे संकट आते ही हैं, प्रतिमानों के निर्धारण का कार्य सघन और जटिल होता है। साहित्य एवं संस्कृति के क्षेत्र में ऐसे जटिल और खतरनाक कार्य को हाथ में लेने का कार्य प्रतिभाशाली जन ही करते हैं। मयंक जी के साहित्य में युगबोध के नाम पर इस संकट को पहचानने का पूरा प्रयास हुआ है।

काव्य रचना का प्रकाश मयंक जी के हृदय में नैसर्गिक रूप से देदीप्यमान था। काव्य रचना, अभिनय एवं संगीत उनकी स्वाभाविक रूचियों में शामिल थे। बीस वर्ष की उम्र में 1942 ई0 में पहली बार उन्होंने 'मंजुल–मंजुल' , 'सुन्दर–सुन्दर' जैसी प्रौढ़ एवं सुगठित रचना का पाठ एक कवि सम्मेलन में किया था। संगीत के प्रति उनकी समझ की प्रौढ़ता का अंदाजा उनके काव्य को पढ़कर समझा जा सकता है, उनके काव्य में गेयता का गुण सदैव विद्यमान रहा। 'उनके गीत कवि गोष्ठियों एवं कवि सम्मेलनों के लिये लाजवाब हैं और जब वे अपने गीतों को स्वयं पढ़ते थे तो उनके गीतों में चार चाँद लग जाते थे, इसका कारण यह है कि वे स्वयं उच्च कोटि के संगीत मर्मज्ञ ही नहीं बल्कि संगीतज्ञ थे। कवीन्द्र रवीन्द्र की तरह वह गीतों की ट्रेनिंग करने मे निष्णात हैं। एक रस सिद्ध, संगीत–मर्मज्ञ व संगीतज्ञ कवि जब गीत पढ़ता है तो अपनी भावना को स्रोत–समाज में पूरी तौर पर रग–रग में व्याप्त कर देता है, "मंजुल मयंक" की कवि सम्मेलनों में

सर्वश्रेष्ठ गीतकारों में गणना होने का यही रहस्य है।'[7]

मयंक जी मूलतः कवि, उपन्यासकार एवं नाटककार थे। उन्होंने साहित्य की विविध विधाओं द्वारा राष्ट्रभाषा के भण्डार में अभिवृद्धि की है। वे ऐसे युग के कवि हैं जिस युग में कविता छायावाद, रहस्यवाद, प्रगतिवाद, प्रयोगवाद, हालावाद, क्रान्तिवाद, सौन्दर्यमय एवं शून्यवाद आदि विभिन्न वादों की धाराओं के बीच प्रवाहमान थी, परन्तु मयंक जी किसी वाद के वादी नहीं थे, वे सिर्फ कवि थे। कवि–कर्तव्य के प्रबल आवेग से युक्त उनका काव्य समस्त काव्य सरोकारों की पूर्तिकर्ता दिखायी देता है। इस प्रकार मयंक जी का काव्य किसी भी वाद तथा आन्दोलन से मुक्त है। वे स्वच्छन्द हैं और अपने ही व्यक्तित्व के अनुचर एवं अनुवादक है। कोई एक वाद अथवा विषय उन्हें काव्य–रचना हेतु प्रेरित नहीं करता, वे बन्धन–विवश न होकर स्वतन्त्र परिचालित हैं। एक तथ्य यह भी कि वे साहित्य और कला का स्रोत और लक्ष्य जीवन को स्वीकार करते हैं तथा 'कला–कला के लिये' सिद्धान्त का विरोध करते हैं तथा उसके लिये जिस फलक की अवतारणा करते हैं वह विस्तृत तथा व्यापक है।

मयंक जी का रचना संसार

हिन्दी साहित्य में मयंक जी का प्रमुख अवदान गीतिकाव्य के क्षेत्र में ही है परन्तु उनकी रूचियों का क्षितिज अत्यन्त व्यापक था। गीतों के साथ ही उनका दखल नाटकों तथा उपन्यास के क्षेत्र में भी था। यह अलग बात है कि ख्याति उन्हें गीतकार के रूप में ही ज्यादा मिली। हिन्दी साहित्य के क्षेत्र में मयंक जी की पहली दस्तक 'रूपरागिनी' काव्य संकलन से हुयी जो 1952 ई0 में प्रकाशित हुआ, तत्पश्चात 1961 ई0 में 'तन–मन की भाँवरे' नामक उपन्यास तथा 1975 ई0 में 'जनता ही अजन्ता है' (काव्य कृति) प्रकाशित हुयी। इनके अतिरिक्त 'रूपमन्दिर' एवं कीर्तिकमल (काव्य कृति) तथा 'गांव का राजा' (नाटक) भी लिखे गये जो अभी तक अप्रकाशित ही है।

हिन्दी काव्य में सत्यानुभूति , मर्मस्पर्शित और रूपनिष्ठा के सजीव और यथार्थ अंकन की दृष्टि से मयंक जी इस युग के श्रेष्ठ कवियों में से एक सिद्ध होते हैं। उन्होंने जीवन के सहज एवं नैसर्गिक प्रवाह को बड़ी ईमानदारी से उजागर किया। मयंक जी के काव्य में प्रणय, समाज, राष्ट्र और प्रकृति का यथार्थतापूर्ण सजीव चित्रण हुआ है। उनकी समस्त कविताओं में यही स्वर विविध रंगों एवं विविध रूपों में रूपायित हुये हैं। उनकी कविताओं में एक नूतन सामाजिक दृष्टि और जीवन–दर्शन है। उन्होंने अपने युग का सबल प्रतिनिधित्व करते हुये काव्य–विधा को प्रचुर सौन्दर्य प्रदान किया। यहाँ मयंक जी की कृतियों का क्रमिक अध्ययन हमारा अभीष्ट है।

रूप–रागिनी (1952 ई0) (गीत–संग्रह)

'रूप रागिनी' मयंक जी का प्रथम काव्य संग्रह है एवं इसका प्रकाशन 1952 ई0 में हुआ। इस संग्रह में 57 कवितायें संग्रहीत हैं। अपनी कविताओं के विषय में एक गीत के माध्यम से कवि ने कहा है–

"गीत नहीं है छन्द नहीं है

यह मेरे मन भाये मोती

....

इनमें मेरे मन की भाषा

मेरे जीवन की परिभाषा

इनमें मेरा हास रूदन है

हर्ष विमर्श निराशा आशा

यही हृदय के फूल यही हैं

नयनों के छलकाये मोती।" [9]

इस संग्रह की कवितायें 'अलाप', 'लय', 'तान' एवं 'मीड़' नामक चार खण्डों में विभाजित हैं। इनमें कवि ने अपनी अनुभूतियों को अकृत्रिम रूप से तीव्रता के साथ प्रस्तुत किया है। कवि की अनुभूतियां वैयक्तिक हैं। उनमें आर्त–पीड़ा, प्रेम की उद्विग्नता और संवेदनशीलता निहित है। सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के स्वर इस कालखण्ड में मौजूद हैं, जिनका परवर्ती कविताओं में अधिक विकसित रूप मिलता है। अपने समकालीन अन्य कवियों से अलग मयंक जी के प्रेम और सौन्दर्य विषयक कविताओं की यह खासियत है कि उनके प्रेम में कहीं भी मांसलता की बू नहीं आती। उनकी सौन्दर्य–भावना में छायावादी रूमानीपन के दर्शन होते हैं जो भौतिक होने से कहीं ज्यादा आध्यात्मिक था। कवि की प्रणय–प्रेरक कवितायें इस संग्रह में ही संग्रहीत हैं जिनमें प्रकृति के मानवीकरण के सुरम्य चित्र मिलते हैं परन्तु कवि ने प्रणय के प्रकृत एवं स्वाभाविक चित्रण में मर्यादा की रेखाओं का कहीं भी अतिक्रमण नहीं किया है। कवि विश्व के कण–कण से अपनी प्रेयसी का संदेश पाता है–

"नित्य असंख्यक तारक खग उड़ आते हैं सुकुमार परों से

शून्य निशा में कथा तुम्हारी कहते हैं कम्पित अधरों से

आते नित्य विहान-विहग उड़कर दिनकर के किरण-करों से

बिखरते संगीत तुम्हारा कलख के कमनीय स्वरों से

फिर नवीन संचय करने को

उड़ जाते हैं देश तुम्हारे।" [10]

कवि का 'प्रेम' स्वच्छ एवं निर्मल है उसमें मांसलता का आराधन नहीं है। 'प्रेम' को स्पष्ट करते हुये कवि कहता है –

"रे नहीं है प्रेम वह जो

रूप को जाकर रिझाये

प्रेम का हो रूप ऐसा

रूप जिस पर रीझ जाये।" [11]

मयंक जी के काव्य में कृत्रिमता नहीं है, वह नैसर्गिक है। उन्होंने जो जिया और समझा है वही गीतों में ढलकर सामने आया है। प्रणय के मूल में अन्ततः काम ही है जो सृष्टि के नाना रूपों में प्रतिफलित है। मयंक जी के काव्य में काम के सात्विक रूप के ही दर्शन होते हैं। मयंक जी की प्रेम और सौन्दर्य विषयक कवितायें इसी संग्रह में ही मौजूद हैं और यद्यपि संख्यात्मक दृष्टि से वह उल्लेखनीय नहीं है परन्तु गुणात्मक दृष्टि से वे समकालीन परिप्रेक्ष्य में शिखर के गीतकार ही सिद्ध होते हैं। प्रणय का राजसिक रूप भी कहीं–कहीं उनके काव्य में दृष्टिगोचर होता है जो कि सृष्टि के जन्म का हेतु है–

"मृदु अंचल के तार-तार में

दुःख सुख की अभिनव अठखेली

रात विरह की आग, प्रात है

मधुर मिलन की फाग रंगीली

अपनी सस्मित धूप छाँह से मेरा सीमित आँगन रंग दो।" [12]

मयंक जी की प्रेम में एक अद्भुत चाह है। वे मिलन नहीं अपितु चिरअतृप्ति के आकाँक्षी हैं–

"सो जाऊं सुधि करते-करते

आने लगे स्वप्न जब सुन्दर

मदिर-मदिर नूपुर ध्वनि करती

चुपके से आना पलकों पर

किन्तु दृगों में ही खो जाना

जब अधीर होकर मैं जागूं।" [13]

प्रेम एवं सौन्दर्य की दृष्टि से इस संग्रह की उल्लेखनीय कवितायें हैं– 'ऐसा वर दें', 'ऐसा जादू कर दें', 'संदेश तुम्हारे', 'मेरा तन रंग दो मन रंग दो', 'प्रथम प्रियतम मधुर क्षण', 'प्रीति किसी की प्राण छू गयी', 'आज सखी दर्पण देखूंगी', 'रूपसि तेरा सिंदूर बिन्दु', 'धीरे–धीरे चलो पवन तुम', 'आओ आंख मिचौली खेलें', 'देव! मुझे अधिकार न देना', 'तुम फूलों की मुस्कान बनो' मयंक जी की इन कविताओं में श्रृंगार से ज्यादा करूण रस का प्रभाव दिखायी देता है।

मयंक जी के मन में नारी के लिये अत्यन्त श्रृद्धा एवं आदर का भाव है। उनके लिये नारी का हेतु मात्र प्रणय तक ही सीमित नहीं है, बल्कि समाज में नारी की स्थिति के प्रति अत्याधिक चिन्ता का भाव है। इसलिये उन्होंने लिखा भी है–

"अलस नयन खोल सजनि
बीती युग यामिनी
हेम हिम किरीटिनी
विशाल भाल भामिनी
जय जननी जन्म भूमि
धरणी ध्रव-स्वामिनी
तू क्यों अनुगामिनी
समग्र अग्र गामिनी।"[14]

मयंक जी प्रणय से ज्यादा सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के समर्थ कवि हैं। मन ही मन उबलने एवं उमड़ने वाली अनुभूतियों की चित्रित करने वाले कवि शिल्पी हैं। 'रूप रागिनी' में उनकी अनुभूतियों में दीप्त स्वरों की अनुगूंज है। इस काव्य संग्रह में सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से अनुप्रणित उल्लेखनीय कवितायें हैं– 'आज युगों के बाद', 'मुक्ति पर्व आया', 'फहर–फहर ओ भारत राष्ट्र पताका', 'कौन चलेगा', 'धवल ध्रुव नक्षत्र भारत',

'कोटि कंठ कोटि गान', 'धरणि सिन्धु में समा न जाये', 'मिट्टी – मिट्टी के लिये मिटी जाती है', 'महलों में हो गया सवेरा', 'अलस नयन खोल सजनि'। कवि मयंक का मस्तिष्क प्रगतिशील विचारों से सदैव समृद्ध रहा है जिसकी प्रथम दृष्ट्या छवि उनके इस संग्रह के गीतों में दिख जाती है। युगानुरूप बदलावों के वे सदैव हिमायती रहे हैं। मयंक जी के इस गीत–संग्रह में व्यक्तिगत भावनाओं से अनुप्राणित, साामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित एवं प्रेम तथा सौन्दर्य की कोमलता से युक्त सभी प्रकार के गीत हैं। प्रकृति की शोभा एवं सुषमा का नारी–रूप में चित्रण मनोहारी है। प्रकृति के मर्म–स्पर्शी मानस–बिंब कवि की उद्दीप्त भावनाओं को सम्प्रेषणीय बनाने के संबल माध्यम बने हैं।

इस गीत संग्रह के समग्र अनुशीलन के उपरान्त निष्कर्षतः यह स्पष्ट है कि इसमें प्रणय राग के साथ–साथ सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से संबन्धित स्वर भी मुखरित हुये हैं। भाषा एवं भावों की दृष्टि से यह कृति प्रौढ़ एवं प्रांजल है। भावों के प्रसारण में भाषा कहीं भी बाधक नहीं बनी। पहला गीत संग्रह होने के बावजूद इस संग्रह की कविताओं में उनकी काव्य–प्रतिभा की प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। उस काल खण्ड में जब कविता बोध से अबोध , रचना से अरचना, शिल्प से अशिल्प तथा कविता से अकविता की ओर जा रही थी, मयंक जी पुराने भावगत एवं रूपगत मूल्यों को एकनिष्ठ सच्चाई से पकड़े थे। इस संग्रह की कविताओं में पाठक को लघुता से वृहत्तर आशय की ओर ले जाने की प्रेरणा एवं प्रवृत्ति है।

उपन्यास–तन मन की भाँवरें (1961 ई0)

मयंक जी की साहित्य–साधना का क्षेत्र मुख्य रूप से काव्य ही है परन्तु उन्हें जहाँ भी भावुकता एवं अनुभूतियों की तीव्रता से अवकाश मिला है, वहाँ उनका ध्यान चिन्तन पक्ष की ओर गया है। कविता में चिन्तन की नहीं भाव की प्रधानता होती है जबकि गद्य में चिन्तन ही प्रधान होता है, मयंक जी एक भावुक कवि होने के साथ–साथ एक चिन्तक

गद्यकार भी हैं, यह बात उनके उपन्यास लेखन से सिद्ध होती है। उपन्यास 'तन–मन की भाँवरे' मयंक जी की दूसरी गद्यकृति है। इससे पूर्व उन्होंने 'गाँव का राजा' नामक एक नाटक लिखा था जो जमींदारी उन्मूलन से सम्बन्धित था। यह एक सफल नाट्यकृति थी जिसका हमीरपुर तथा बाँदा के रंगमंच पर अनेक बार मंचन भी हुआ। दुर्भाग्य से यह नाट्य कृति अब अप्राप्य है।

मयंक जी की दूसरी गद्यकृति उपन्यास 'तन मन की भाँवरें' , सामाजिक यथार्थ से प्रेरित कृति है और यदि वर्गीकरण को आवश्यक माना जाये तो इसे सामाजिक उपन्यासों की श्रेणी में रखा जा सकता है। प्रेमचन्द के पश्चात हिन्दी उपन्यास जिस सर्जनात्मक विस्फोट की सूचना देता है, उसका एक रूप यदि मनौवैज्ञानिक और प्रयोगशील उपन्यास के रूप में दिखायी देता है, तो दूसरी ओर ऐसे भी अनेक लेखक थे जो कुछ मौलिक हस्तक्षेप के साथ प्रेमचन्द की ही परम्परा को विस्तार दे रहे थे। अपने समाज के बहुवर्णी यथार्थ को इन लोगों ने पर्याप्त विश्वसनीयता के साथ अंकित किया है। अपने समाज के प्रति इन लेखकों का रुख आलोचनात्मक है और वे कुल मिलाकर यथास्थितिवाद का विरोध करके सामाजिक परिवर्तन की मूलगामी आकांक्षा के साथ दिखायी देते हैं। इन लेखकों की परम्परा में ही उपन्यासकार मयंक जी का भी नाम जोड़ा जा सकता है।

मयंक जी ने समाज की एक मूल समस्या 'दहेज' को केन्द्र में रखकर इस उपन्यास की रचना की है, 'दहेज–समस्या' तत्कालीन समाज में भी मौजूद थी और वर्तमान में भी अपनी गहरी जड़ों के साथ मौजूद है। इस सामाजिक अभिशाप से अभिशप्त समाज को देखकर उपन्यास–सम्राट प्रेमचन्द ने 'निर्मला' तथा 'सेवासदन' जैसे उपन्यासों के माध्यम से अपने विरोध का स्वर मुखर किया था।

अपनी सोद्देश्यता के कारण 'तन मन की भाँवरे' नामक उपन्यास मयंक जी की एक

अनुपम कृति है, इस उपन्यास की कथा झाँसी से आरम्भ होती है। जानकीदास की लड़की शशिबाला का विवाह है, बारात लखनऊ से आयी है। बारात की तरफ से मांस एवं शराब की फरमाइश की जाती है। आर्यसमाजी विचारधारा से प्रेरित जानकीदास के द्वारा मांग की पूर्ति न किये जाने पर बाराती रूष्ट होकर लड़के से रेडियो मांगने के लिये कहते हैं; साथ ही रेडियो न मिलने पर वे लड़की की विदाई न कराने की धमकी देते हैं। बाद में लड़की की विदाई कराकर कानपुर रेलवे स्टेशन पर उसे यह कहकर उतार लिया जाता है कि लड़की के बाप का बदला इससे ले लिया गया। दूसरी तरफ एक झूठी कहानी गढ़ ली जाती है कि लड़की किसी प्रेमी के साथ कानपुर स्टेशन से भाग गयी और घर पहुंचकर इसी कहानी को दुहरा दिया जाता है। जैसे समुद्र में पत्थर फेंकने पर कुछ क्षण तक वह लहरों से आन्दोलित होकर पुनः शान्त हो जाता है, यही दशा नीलकंठ , मधुकर एवं श्यामा के परिवार की होती है। दूसरी तरफ कानपुर रेलवे स्टेशन पर छूटी हुयी शशिबाला की कहानी कु0 रेनू एवं उसकी मां के साथ जुड़कर आगे बढ़ती है।

एकाकी जीवन से त्रस्त मधुकर अपने भाई के यहाँ इलाहाबाद एक समारोह में जाता है। यहीं उसकी भेंट कु0 नीरजा नामक एक लड़की से होती है। संगीत की साधना से उत्पन्न उन दोनों का प्रणय अन्त में जीवन बंधन के रूप में बदल जाता है। यहीं पर शशिबाला भी नौकरानी के रूप में उपस्थित है परन्तु उसे मधुकर पहचान नहीं पाता। शशिबाला उसे पहचान कर भी अपना भेद उस पर प्रकट करना नहीं चाहती, उसकी आकांक्षा अपने प्रिय को भरनेत्र देखने की है। यहाँ रहते हुये वह मधुकर एवं नीरजा के विवाह की बात सुनती है जिससे उसका नारीत्व आहत होता है और वह चुपचाप घर से निकल जाती है। दूसरी तरफ नीलकंठ एवं उनके साले अवैध रूप से शराब का धन्धा करते हैं, अचानक ही उनकी शराब कानपुर की पुलिस द्वारा पकड़ ली जाती है। फलस्वरूप नटवरलाल एवं नीलकंठ दोनों ही पकड़े जाते हैं। नटवरलाल के घर

की तलाशी लेते समय मधुकर को शशिबाला के पत्र प्राप्त हो जाते हैं, जिन्हें पढ़कर मधुकर शशिबाला को प्राप्त करने हेतु कानपुर रवाना हो जाता है, जहां वह उसे चन्दा के रूप में प्राप्त करता है। अंत में नीलकंठ आदि के द्वारा शशिबाला एवं मधुकर को स्वीकार करने तथा अपने अपराधों के लिये पश्चाताप करने के साथ उपन्यास समाप्त हो जाता है।

इस उपन्यास में मयंक जी ने मध्यमवर्गीय समाज की समस्याओं के साथ अवैध रूप से शराब का धन्धा करने वाले सफेदपोश व्यक्तियों को भी बेनकाब करने का प्रयास किया है। मध्यमवर्गीय समाज झूठे आत्मदर्शन की भावना से किस प्रकार से ग्रस्त होता है, इसका परिचय भी उपन्यास के आरम्भ में ही मिल जाता है। उपन्यास की मुख्य कथा तो जानकीदास एवं उनकी पुत्री शशिबाला तथा नीलकंठ एवं उनके पुत्र मधुकर से सम्बन्धित है परन्तु मुख्यकथा को गति प्रदान करने हेतु कई आनुषंगिक कथायें भी कथा–प्रवाह में शामिल की गयी हैं जो मुख्य कथा का अंग ही लगती हैं। "उपन्यास की कथा की विशेषता इसमें होती है कि उपन्यासकार जो कुछ भी कहानी प्रस्तुत करें, उसे पाठक अपनी कहानी मानकर उसमें रस का अनुभव करें।"[15] इस दृष्टि से मयंक जी का यह उपन्यास सफल है। इस उपन्यास में घटी प्रत्येक घटना पाठक के मन को अपने से बांधती हुयी अग्रसर हुयी है। कौतूहल को बनाये रखने के लिये इस उपन्यास में संयोग एवं घटनाओं का सहारा लिया गया है। जिसके माध्यम से पाठकों की जिज्ञासा को बनाये रखते हुये कथा सूत्र अग्रसर हुआ है। मयंक जी ने अपने उपन्यास में अवसर विशेष पर सुन्दर कथोपकथनों का प्रयोग कर कथा के विकास में सहयोग प्रदान किया है। ये कथोपकथन सहज, स्वाभाविक और प्रसंगानुरोध से प्रेरित एवं प्रभावोत्पादक हैं। देशकाल एवं वातावरण की दृष्टि से मयंक जी विशेष सजग रहे हैं। इस उपन्यास के आरम्भ में पृष्ठभूमि के रूप में वातावरण की सृष्टि की गयी है, जिससे मध्यमवर्गीय समाज की मनः

स्थिति का पता चल जाता है। मयंक जी के सफल कवि होने का स्पष्ट प्रभाव यहाँ दृष्टिगोचर होता है इसी कारण जिस विषय को उन्होंने उठाया उसका यथार्थ चित्र पूर्ण तल्लीनता के साथ खींचा है।

भाषा शैली की दृष्टि से भी मयंक जी का यह प्रथम प्रयास सफल ही कहा जायेगा। कम शब्दों में यथार्थ चित्र प्रस्तुत कर देना मयंक जी की भाषायी विशेषता है। भाव प्रवणता में कहीं–कहीं उनकी भाषा गद्यगीत की सीमा का स्पर्श करने लगी है। जैसे– 'समय की पलकों पर दिन और रात तैरते रहे। रात की रानी चन्दा की पालकी पर बैठकर सौ–सौ बार आयी और धरती पर चाँदनी का आंचल डालकर चली गयी।'[16]

'हेमन्त और शिशिर के पंखों पर उड़ता हुआ बसंत आ गया। कली–कली अंगड़ाई लेकर जाग उठी। धरती की धूल फूलों से सज गई। गली–गली महक उठी।'[17]

"प्रस्तुत उपन्यास दहेज को केन्द्र मानकर लिखा गया है, अतः इसका उद्देश्य केवल दहेज की कुप्रथा का उल्लेख करना मात्र न होकर एक समुचित समाधान प्रस्तुत करना भी है। इसी कारण यह उपन्यास उपन्यासकार प्रेमचन्द की भाँति यथार्थोन्मुख आदर्शवाद का अनुगामी जान पड़ता है। निश्चय ही इस क्षेत्र में मयंक प्रेमचन्द और महात्मा गाँधी के ऋणी है। मधुकर के द्वारा शशिबाला का स्वीकार यथार्थ के धरातल पर आदर्श की स्थापना मात्र है।"[18]

उपन्यास के क्षेत्र मे मयंक जी का यह प्रथम प्रयास किसी भी रूप में एक नये लेखक की कृति नहीं लगता है परन्तु यह अवश्य है कि उपन्यास विधा की तत्कालीन प्रवृत्तियों से साम्य न रखते हुये इसका रचना–विधान उस समय से पूर्व अर्थात प्रेमचन्द युग का है। "प्रेमचन्द के उपरान्त हिन्दी उपन्यास कई मोड़ों से गुजरता हुआ दिखायी देता है जिन्हें स्थूल रूप से तीन दशकों में बाँटा जा सकता है– 1950 ई0 तक के उपन्यास, 1950 से 1960 तक के उपन्यास और साठोत्तरी उपन्यास। पहला दशक

मुख्यतः फ्रायड एवं मार्क्स की विचारधारा से प्रभावित है, दूसरा प्रयोगात्मक विशेषताओं से और तीसरा आधुनिकतावादी विचारधारा से''[19] यन्त्रीकरण, दो महायुद्धों और अस्तित्ववादी चिंतन के फलस्वरूप पैदा हुयी आधुनिकता की स्थिति, आस्थाविहीन समाज, अनिश्चिय की स्थिति में लटके हुये इंसान और आत्मनिर्वासन की प्रवृत्ति से प्रेरित तत्कालीन समाज, व्यक्ति एवं विचारधारा विवेच्य समय में मुख्यरूप से उपन्यास की कथाभूमि का सृजन कर रहे थे; ऐसे में मयंक जी का घटना प्रधान सामाजिक रूझान उन्हें समकालीन परिप्रेक्ष्यों से मुक्त कर प्रेमचन्द युग का ही घोषित करता है; चाहे फिर बात सोद्देश्यता की हो या फिंर रचना कौशल की।

जनता ही अजन्ता है (1975 ई0) (गीत संग्रह)

'जनता ही अजन्ता है' मयंक जी का दूसरा काव्य–संग्रह है जिसका प्रकाशन सन् 1975 ई0 में हुआ था। इस संग्रह में कुल 35 कवितायें संग्रहीत हैं जिनमें से 'कौन चलेगा' , 'रात शेष है' , 'मिट्टी मिट्टी के लिये', 'ओ अभिनेता' कवितायें पुर्न प्रकाशित हैं। मयंक जी मुख्य रूप से सामाजिक, राष्ट्रीय एवं मानवीय चेतना के समर्थ कवि हैं। इस संग्रह की रचनायें राष्ट्रीय सरोकारों के साथ–साथ सामाजिक एवं मानवीय परिप्रेक्ष्यों पर आधारित विषमता की अभिव्यक्ति भी करती हैं। उनकी कवितायें प्रगतिशीलता की परिचायक हैं। जिनमें प्रगति के लिये संघर्ष करने की प्रेरणा है। परवशता की प्राचीरों को तोड़कर युग के साथ–साथ चलकर मंजिल तक पंहुचने का संदेश हैं। इस संग्रह की कविताओं में शिल्पगत सहजता एवं प्रौढ़ता के दर्शन होते हैं। उनके प्रगतिशील एवं विद्रोही स्वरों की अभिव्यक्ति ओजमयी एवं सशक्त भाषा में हुयी है। युग से प्रभावित होकर उन्होंने समसामयिक विषयों को अपने काव्य में स्थान दिया तथा महापुरुषों को उद्बोधित करके श्रेष्ठ उद्बोधक गीतों की सृष्टि की। महात्मा गाँधी को सम्बोधित कर उनके प्रति अपनी श्रद्धा प्रकट की। उन्होंने बापू का विशेष महत्व स्थापित किया है–

"इतिहास ने लिख ली है यह सदी तुम्हारे नाम।

बापू , तुमको मेरा प्रणाम।।

तुमने हमको दी आजादी,

लौट गयी गोरी राहजादी,

मखमल-मखमल वस्त्र गेरूये,

तजकर तुमने पहनी खादी,

जहाँ न सूर्य अस्त होता था, तुमने कर दी शाम।

बापू तुमको मेरा प्रणाम।।" [20]

इस संग्रह की कविताओं में मयंक जी ने राष्ट्रीय चेतना के स्वरों को व्यापक अभिव्यक्ति दी है परन्तु उनकी राष्ट्रीयता और देश-प्रेम की भावना सीमित और संकीर्ण नहीं है। जिसमें कि मनुष्य संकुचित मनोभावों से युक्त होता है और अपने को देश एवं काल की सीमाओं में जकड़े रखता है और जो इन सीमाओं में नहीं आते उन्हें वह अजनबी मानता है। मनुष्य किसी देश अथवा प्रान्त का बाद में है, पहले वह समस्त विश्व का है। प्रगतिशीलता के इसी पहलू के कारण उन्होंने मानवजाति में निहित गरीबी एवं शोषण के विरुद्ध स्वर मुखर किया है –

"अभी भूमि पर नहीं संकुचित

हुयी विषमता की सीमायें,

पथ रज को छू सकीं न अब तक

रंग महल की दीप शिखायें,

अभी देश में श्रम का शोषण

पूंजी का उत्पात शेष है।" [21]

'मानव समस्त विश्व का है', कवि के संदर्भ में इस अंतर्राष्ट्रीयता का यह अर्थ कदापि नहीं है कि कवि असीम की कल्पना में सीमा को इतना विस्तृत कर गया है कि वाह्य आक्रमण के समय अथवा किसी आन्तरिक संकट के समय भी वह उसकी ओर उन्मुख नहीं होता। कवि इस क्षेत्र में निरन्तर सजग है, तभी तो चीनी आक्रमण के समय कवि रौद्र स्वर में हुंकार उठा –

"शत्रु चल रहा है फूलों पर, शबनम की छाती पर,
आज चीन ने पांव रख दिये, गौतम की छाती पर,
सावधान, ओ चीन। शक्ति से सत्य नहीं हारेगा,
चमकेगा आत्मा का सूरज ऐरान की छाती पर,
आज देश की फुलवारी में भड़क उठी चिनगारी,
अब तो धधक उठो ज्वाला से जलते अंगारो।" [22]

सामाजिक अन्याय, शोषण तथा वैषम्य किसी भी व्यक्ति को अप्रिय है और सदैव से अप्रिय रहा है। युग विशेष में शासन–व्यवस्थाओं के षडयन्त्र तथा दमनचक्र इनके पोषक रहे हैं और अनेक अर्थों में किन्हीं सीमाओं तक इनकी वर्तमान स्थिति में उन्ही का हाथ है। चतुर सौदेबाज शासकों से गठबंधन करते हैं और चूसते हैं, भोले–भाले किसान–मजदूर तथा मध्यम वित्त कर्मचारी–श्रमिक अथवा बुद्धिवादी। कवि मयंक ने ऐसी सामाजिक बुराई के प्रति अपने गीतों के माध्यम से तीव्र क्षोभ व्यक्त किया है–

"रोशनी खूब फैलाओ संसार में,
हां मगर नीड़ अपने जलाकर नहीं,
तुम नये चाँद सूरज उगाओ मगर,
ये दिये आंगनों के बुझाकर नहीं,
आसमां पर उड़ो या महल में रहो,

पर महल हड्डियों के बनाकर नहीं,

तुम हंसो जोर से, खोलकर दिल हंसो,

पर हंसी दूसरों की चुराकर नहीं,

क्यों लगाते हो उपनाम हैवान का,

आज इंसान के नाम के सामने।" [23]

मयंक जी के इस संग्रह की कविताओं में प्रगतिशीलता का अंश अधिक है। उनके काव्य में मानव प्रेम की भावना प्रबलतम एवं सामाजिक विषमता के प्रति विक्षोभ है। देश की तत्कालीन परिस्थितियों से असंतुष्ट मयंक जी आर्थिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता को ही सच्ची स्वतन्त्रता मानते हैं। सामाजिक समता और सामाजिक परिवर्तन का संकेत देने वाली कविताओं में उनका मानव प्रेम अभिव्यक्त हुआ है। प्रत्येक कोमल हृदय की भाँति कवि मयंक मानव की साकार मूर्ति के प्रति भीषण आस्थावादी थे। उनकी मानवीय आस्था ईश्वरीय आस्था से कमतर नहीं थी, बल्कि उससे बढ़कर ही थी। वे मनुष्य को निराकार ईश्वर का साकार रूप मानते थे–

"अगणित तारों के स्वर में कहता जग का भगवान है-

'मैं हूं निराकार , मेरा साकार रूप इंसान है।" [24]

इस संग्रह की कविताओं के अध्ययन से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि पूर्व की अपेक्षा विचार, भाषा एवं भावों की दृष्टि से मयंक जी के काव्य में प्रौढ़ता दिखायी देती है। इस संग्रह की कविताओं में जहाँ सामाजिक वैषम्य के प्रति तीक्ष्ण स्वर मिलते हैं वहीं मानवतावाद के समर्थन में भी मुखर स्वर प्राप्त होते हैं। मयंक जी पुरातन के प्रेमी नहीं बल्कि प्रगतिशीलता के समर्थक सिद्ध होते हैं।

सन्दर्भ

1. दैनिक जागरण, कानपुर संस्करण, 1 अक्टूबर 2007, पृष्ठ–1।
2. सक्सेना, चन्द्रिका प्रसाद; मयंक काव्य में छलकती पीड़ा, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–113।
3. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–133।
4. पट्टाभि सीतारमैय्या, काँग्रेस का इतिहास, पृष्ठ–399।
5. बेनीपुरी, बैजनाथ; भारतीय संस्कृति और इतिहास, पृष्ठ–174।
6. चतुर्वेदी, रामस्वरूप, डॉ0; हिन्दी नवलेखन, पृष्ठ–37।
7. सिंह, शिवनन्दन; मंजुल मयंक : एक प्रतिभाशाली व्यक्तित्व, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–123।
8. 'स्वर' – रूपरागिनी' – पृष्ठ 8
9. संदेश तुम्हारे–रूपरागिनी– पृष्ठ 12
10. 'रे प्रणय का सहन क्रंदन'– रूपरागिनी–पृष्ठ–46
11. 'मेरा तन रंग दो' – रूप रागिनी' – पृष्ठ 15
12. आओ आँख मिचौली खेलें– रूप रागिनी–पृष्ठ–41
13. अलस नयन खोल सजनि – रूपरागिनी–21
14. तनमन की भांवरे–पृष्ठ 123
16. तन मन की भांवरे–पृष्ठ 122
17. मयंक के उपन्यास साहित्य का एक विश्लेषण–सुधारानी पाण्डेय अभिनन्दन ग्रन्थ – पृष्ठ 121
18. डॉ0 नागेन्द्र – पृष्ठ 672।
19. 'बापू तुमको मेरा प्रणाम' – जनता ही अजन्ता है– पृष्ठ 1
20. 'रात शेष है'– जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–43
21. 'शत्रु को बढ़कर ललकारो'–जनता ही अजन्ता है–पृष्ठ 14–15
22. 'प्रीति का गीत' – जनता ही अजन्ता है, पेज–26
23. 'मेरा मनमोहन सांवरिया'– जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–7

अध्याय 2

अध्याय 2
काव्य–चेतना के विषयगत आधार

मयंक जी के काव्य के प्रमुख विषय प्रकृति, व्यक्ति, समाज, राष्ट्र, सामाजिक वर्ग आदि हैं। इन्हीं विभिन्न घटकों का विकास मयंक जी के गीतों में उपलब्ध है। देखना यह है कि किस प्रकार मयंक जी की कृतियों में वस्तुगत आधार पर हिन्दी गीत व्यक्ति चेतना की ओर उन्मुख हुआ है।

प्रकृति

प्रकृति एवं मानव का सम्बन्ध चिरन्तन है। प्रकृति अनन्त वैभव से परिपूर्ण, ऐश्वर्यशालिनी एवं विविध स्वरूपा है। प्रकृति का अतुल वैभव एवं निरन्तर परिवर्तित रूप मानव हृदय को आह्लादित करता है। प्रकृति की रहस्यपूर्ण सत्ता मानव हृदय में कौतुहल जगाती है। मानव उसके प्रति सदैव जिज्ञासु बना रहता है एवं उसके रहस्य को जानने के लिए उत्सुक रहता है। प्राकृतिक सुषमा को देखकर वह कभी मुग्ध होता है, तो कभी विस्मित। प्रकृति के प्रति उसकी मुग्धता एवं जिज्ञासा स्वाभाविक ही है। प्रकृति के प्रति मानव का अनुराग उसके प्रकृति प्रेम का परिचायक है। प्रकृति के विविध व्यापार मानव हृदय को तो उद्वेलित करते ही है, मानवेत्तर जीवों पर भी इसका प्रभाव लक्षित होता है। बसन्त ऋतु के आगमन पर पक्षियों का चहकना प्रारम्भ हो जाता है, कोयल कूकने लगती है, वर्षा ऋतु के आगमन पर पपीहा पी–पी पुकारने लगता है, मोर कूकने लगते हैं। सारा वातावरण उल्लासमय दिखायी देने लगता है। प्रकृति सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा कवि हृदय को अधिक आकर्षित करती है क्योंकि कवि हृदय सामान्य व्यक्तियों की अपेक्षा अधिक संवेदनशील होता है। साधारण व्यक्ति प्राकृतिक सौन्दर्य में अभिभूत तो होता है किन्तु वह अपनी अनुभूतियों को व्यक्त करने में अपने आपको असमर्थ पाता है, जबकि कवि अपनी काव्य प्रतिभा के बल पर उन सौन्दर्यानुभूतियों को अंकित करता चलता है,

वह उन चित्रों को कल्पना के रंग में रंग कर पूरी चित्रात्मक के साथ प्रस्तुत करके हमें चमत्कृत कर देता है। प्रकृति के प्रति कवि की अनुभूतियाँ अधिक सक्रिय एवं मार्मिक होती हैं। प्राकृतिक शोभा, सुषमा उसकी चित्तवृत्तियों को प्रभावित तो करती ही है, साथ ही काव्य प्रेरणा भी प्रदान करती हैं। प्रकृति उसकी श्रृंगारिक सौन्दर्यानुभूतियों के प्रकाशन का माध्यम बन जाती है। प्रकृति के संसर्ग में उसे विशेष ऐन्द्रिय सुख का अनुभव होता है। उसके साथ वह आत्मिक सम्बन्ध स्थापित कर लेता है। प्रकृति पर चेतना का आरोप करके उसे माँ, देवी, सहचरी और प्रिया के रूप में देखने लगता है।

प्रकृति मयंक जी की प्रमुख काव्य प्रेरणा रही है। उन्होंने काव्य में प्रकृति के अनुभव चित्र खींचकर उसका मनोहारी वर्णन किया है। प्राकृतिक चित्रण मे उनकी विविध मनःस्थितियों का उद्घाटन हुआ है। ये प्रकृति चित्र उनकी रोमांटिक वृत्तियों के अनुरूप हैं। मयंक जी के काव्य में प्रकृति माध्यम के रूप में व्यंजित हुयी है। वे प्रकृति के कवि नहीं है, परन्तु उन्होंने प्रकृति के मनोरम और मुग्धकारी चित्र खींचे हैं।

मयंक जी ने प्रकृति को दार्शनिकता, अलौकिकता अथवा आध्यात्मिकता से सम्बद्ध करने का प्रयत्न नहीं किया। उन्होंने अपने काव्य में प्रकृति को चैतन्य शक्ति के रूप में ही चित्रित किया है। मयंक जी ने अपने काव्य में प्रकृति को मौलिक और प्राणभूत तत्वों के रूप में व्यंजित किया। उसका भावात्मक मानवीयकरण करके कोमल और रम्यचित्र प्रस्तुत किये हैं। प्रकृति उनकी कल्पना और सौन्दर्याभिव्यक्ति का श्रेष्ठ माध्यम बनी है। ये प्रकृति के कण कण में प्रिया की आभा को देखते हैं। प्रकृति कवि प्रिया के सौन्दर्य का प्रतिबिम्ब बन गयी हैं –

"हरे-हरे परिधान पहनकर

हरे हरे परिधान पहनकर प्रेयसि तुम पावस में आती

तुम्हीं पहिन वासन्ती चोली भर भर झोली सुमन लुटाती

तुम्हीं ग्रीष्म में बन वियोगिनी विरहानल से विश्व तपातीं

शरद ज्योत्सनाञ्जल में छिपकर जग में तुम्हीं सुधा बरसातीं

नित्य निरन्तर देख रहा हूँ

सभी मनोहर वेष तुम्हारे।" [1]

कवि की विरहाकुल स्थिति एवं एकाकी जीवन के क्षेत्रों की मार्मिक व्यंजना प्राकृतिक उपमानों एवं प्रतीकों के माध्यम से अधिक सशक्त बन पड़ी है–

"नित्य असंख्यक तारक खग उड़ आते हैं सुकुमार परों से

शून्य निशा में कथा तुम्हारी कहते हैं कम्पित अधरों से

आते नित्य विहान-विहग उड़कर दिनकर के किरण-करों से

बिखराते संगीत तुम्हारा कलरव के कमनीय स्वरों से

फिर नवीन संचय करने को

उड़ जाते हैं देश तुम्हारे।" [2]

मयंक जी सौन्दर्य और प्रणय के कवि हैं प्रकृति के नहीं, किन्तु उनका प्रकृति वर्णन मनोरम है। प्रकृति का स्वतन्त्र चित्रण उनके काव्य में बहुत कम हुआ है। प्रेयसी के सौन्दर्य वर्णन में उन्होंने प्राकृतिक रूपकों एवं उपमानों का आश्रय लिया है–

"निशि सी काली अलकें समेट

ओढ़ा अरुणोदय सा अंचल

मध्यस्थ धवल सरिता तट पर

निकला हँसता रवि बाल विमल

उज्जवल जल को प्रतिबिम्बित कर

रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु।" [3]

मयंक जी के काव्य में प्रकृति सम्बन्धी गीत कवि की मार्मिक संवेदनाओं की सबल अभिव्यक्ति का ही माध्यम रहे हैं। वे प्रिया की सुन्दर छवि को प्राकृतिक सुषमा में देखते हैं। प्रेयसी के प्रति अत्यधिक सौन्दर्याशक्ति होने के कारण कवि ने प्रकृति को भी नारी सुलभ उद्‌भावना से रूपायित किया है–

"चन्दा के साथ चन्द्र किरन जाग रही है,

दुल्हे के साथ जैसे दुल्हन जाग रही है,

हिलती हैं काँपती हैं सितारों की भी पलकें,

उनके भी वो खामोश इशारे नहीं सोये ।

सोयी नहीं , अंगड़ाईयाँ लेती हैं तरंगें,

जैसे किसी के दिल में मचलती हों उमंगें,

गोरी नदी की देह को बाहों में समेटे ,

कुछ बातें कर रहे हैं किनारे नहीं सोये ।" [4]

मयंक जी की प्रकृतिपरक रचनाओं को देखते हुए कहा जा सकता है कि उन्होने अपनी भावनाओं की सफल अभिव्यक्ति और वातावरण निर्मित करने के लिए आवश्यकतानुसार प्रकृति चित्रण किया है। वातावरण चित्रण तथा भाव बिम्बों को साकार रूप में प्रस्तुत करके अपनी अपूर्व क्षमता का परिचय दिया है। प्रकृति और वातावरण के सन्दर्भ में उनकी सौंदर्याभिव्यक्ति बड़ी सहज एवं मनोरम है। कवि की भाव प्रवणता और प्राकृतिक सुषमा एक दूसरे के पूरक बन गए हैं।

व्यक्ति या मानव

छायावादोत्तर काल में युगीन परिस्थितियों के कारण कवियों में जो विषाद, निराशा एवं पलायनवादी वृत्ति जन्मी वह काव्य में व्यक्तिवादी काव्यधारा के रूप में प्रकट हुयी। इस काव्यधारा में व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति का प्राधान्य था। व्यक्तिवादी

काव्य का उद्देश्य मानव के अस्तित्व को स्वीकार करते हुए मानवतावाद का सन्देश देना है। गाँधी दर्शन के अनुसार मानव सेवा ही सच्चा मानवधर्म है। छायावादोत्तर काल के कवियों पर गाँधी दर्शन का व्यापक प्रभाव था। इन कवियों ने गाँधी दर्शन के मानवतावादी सिद्धान्त को अपनाया तथा काव्य में मानव को महत्वपूर्ण स्थान देकर उसके अस्तित्व को समाज में स्थापित करने में महत्त्वपूर्ण भूमिका निभाई।

समाजवादी दर्शन के अनुसार भी व्यक्ति समाज की महत्वपूर्ण इकाई है। समाज अनेक व्यक्तियों का समूह है और व्यक्ति से ही समाज बनता है। काव्य में व्यक्ति चित्रण समाज का ही चित्रण है। **'साहित्य समाज का दर्पण है'** उक्ति के अनुसार जब कवि व्यक्ति का चित्रण करता है तब वह उस व्यक्ति के माध्यम से संपूर्ण समाज का ही चित्रण करता है। कवि भी समाज का ही अंग है इसलिए वह समाज की समस्या को अपनी समस्या और अपनी निजी समस्या को समाज की समस्या मानकर चलता है। इसीलिए उसकी व्यक्तिगत अनुभूतियों की अभिव्यक्ति मानव हित की ओर संकेत करती है। 'व्यक्ति' काव्य का प्रमुख विषय है। समाज में वर्ग, सम्पत्ति और शिक्षा के आधार पर व्यक्तियों की भिन्न भिन्न स्थितियाँ है। इस प्रकार समाज में व्यक्ति अनेक वर्गों में विभाजित है।

व्यक्तिवादी काव्य में व्यक्ति की अहम् भूमिका होती है। व्यक्ति की समस्यायें, उसकी दीन – हीन दशा एवं उसे इस दशा में पहुँचाने वाली परिस्थितियों का व्यक्तिवादी काव्य में विशद वर्णन हुआ है। प्रगतिवादी काव्यधारा का यह प्रमुख विषय था। कवि समाज में व्याप्त विषमता एवं अन्याय से क्षुब्ध है। उन्होने उन समस्त परिस्थितियों एवं समस्याओं को चित्रित किया है जिनके कारण ये विषमतायें समाज में अपनी जड़े जमायें हैं। इनके विरूद्ध संघर्ष का कवि ने आह्वान किया है। वे काव्य में सामाजिक विषमता एवं अन्याय का चित्रण करके जागृति लाना चाहते हैं। उनके काव्य में विद्रोही स्वर उनके

मानव प्रेम का परिचय देते हैं। कवि उस समाज को समूल नष्ट कर देना चाहते हैं जिसमें मानव का शोषण हो रहा है–

"अब इन्द्रधनुष के रंग भरो,

सूखी - मुरझाई कलियों में,

किरनों के फूल खिलाओ अब,

सुनसान अंधेरी गलियों में ,

रोती तकदीरों को बदलो, घायल तस्वीरों को बदलो,

अब गलते हुये आँसुओं को, बदलो जलते अंगारों में ।" [5]

और

"गम उसको कम होगा जिसको,

लूटा हो चोर-लुटेरों ने ,

वह खून तड़पता रहता है,

चूसा हो जिसे कुबेरों ने ,

जो भर दें धुआं हवाओं में, फूंके बारूद फ़िजाओं में,

जो घोलें जहर दवाओं में, उनको चुन दो दीवारों में ।" [6]

मयंक जी का काव्योदय उस युग में हुआ था, जब भारतीय समाज जाति, धर्म और वर्ण की संकीर्ण भावनाओं से ग्रस्त था। आर्थिक विषमता और वर्ग वैषम्य के कारण व्यक्तियों में क्षोभ और असन्तोष व्याप्त था। कवि इन विषमताओं को देखकर क्षुब्ध होते हैं। उन्हें ऐसी तमाम विसंगतियों से क्षोभ है जो मानव को मानव का शोषण करने की प्रवृत्तियों को प्रोत्साहन करती हैं। वे आक्रोशमयी वाणी में फुंफकार उठते हैं–

"ऐसे रंग महल जब आयें,

जिन में चाँदी का उजियारा ;

जहाँ हड्डियों की ईंटें हैं ,

जिनमें लगा खून का गारा ;

वहाँ गिरा देना तुम बिजली ,

बरसाने लगना अंगारे।"[7]

मानव के शोषित रूप से कवि को सदैव सहानुभूति रही है, इसीलिए अपने काव्य के माध्यम से कवि शोषण के विरूद्ध जागरण का प्रयास करते रहे–

"मुश्किल है जग में जीना,

आँसू बन बहे पसीना ,

श्रम की उंगली में मुंदरी ,

तरसे बिन कांच-नगीना ,

श्रम की आरती उतारो,

पीड़ा के चरन पखारो ,

आंसू के पहरेदारो ,

दुःख का गोवर्धन धारो !" [8]

और

"उस नगरी में शोर न करना,

नींद न टूटे पाकर बाधा ;

जहाँ भूख की सेज बिछाकर ,

अभी-अभी सोई है राधा ;

हाथों में भिक्षा के कंगन ,

पंथ धूलि से मांग संवारे ।" [9]

कवि मानव शोषण को देखकर श्रमिक, कृषक एवं दलित वर्ग के हिमायती बन जाते हैं। जनवादी चेतना ने उन्हें क्रान्ति के लिये प्रेरित किया। उन्होंने श्रमिक, कृषक और दलित व्यक्ति की दशा का यथार्थ चित्रण करके उनकी ओर हमारा ध्यान आकर्षित किया। समाज में अभावग्रस्त निर्धन व्यक्ति का चित्रण उन्होंने प्रभावशाली ढ़ंग से किया है।

मयंक जी ने व्यक्ति मन की कुंठाओं, राग–द्वेष और दुर्बलताओं को स्थूल और प्रत्यक्ष अभिव्यक्ति दी। इनका 'व्यक्ति' चित्रण ऐसे सामान्य व्यक्ति की सूचना देता है जिसमें निराशा, वेदना, अभाव एवं आक्रोश है। कवि व्यक्ति के सुख–दुःख एवं अभावों के प्रति सजग है। मानव की राह में आने वाली सामाजिक, धार्मिक, नैतिक अथवा अन्य रूढ़ियों से पीड़ित है एवं कवि उनका ध्वंस चाहता है। व्यक्ति की समस्याओं को विविध स्तरों पर अभिव्यक्त करके कवि ने अपनी सजगता और मानव के प्रति प्रेम का परिचय दिया है। मानव के सुख–दुःख और राग–विराग से प्रेरित होकर उन्होंने समाज की मूलभूत दुर्बलताओं और अंधकारमय पक्षों को प्रकट करके एक महत्त्वपूर्ण कार्य किया है। मनुष्य की आर्थिक, सामाजिक समस्याओं और अन्य विसंगतियों का सीधा परिचय कराने और विकास के लिए पथ प्रशस्त करने में इनके योगदान को अस्वीकार नहीं किया जा सकता है। कवि ने मानव चित्रण के माध्यम से मानवतावादी भावना का प्रसार किया है।

राष्ट्रीय–चेतना

मयंक जी की राष्ट्रीय चेतना को दो मुख्य आयामों में देखा जा सकता है। एक तो भारतीय जनमानस को परतंत्रता का बोध करा के स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए प्ररित करना, दूसरे स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रव्यापी समस्याओं के प्रति जन जागरण का श्लाघनीय

प्रयास करना।

सामाजिक परिवेश एवं चिन्तनधारा कोमल हृदय साहित्य निर्माताओं को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। मयंक जी के साहित्यिक जीवन की विशिष्टता यह रही है कि उन्होंने युगानुरूप अपनी विचारधारा एवं मान्यताओं को परिवर्तित किया। समाज में व्याप्त विषमताओं ने उन्हें दिशा परिवर्तन की प्रेरणा दी। वे प्रणय के संयोग–वियोग के गीतों के स्थान पर राष्ट्र एवं समाज से सम्बन्धित गीत गाने लगे। उनके गीत समाजिक एवं राष्ट्रीय संघर्ष की अभिव्यन्जना करने लगे।

राष्ट्रीयता की प्रेरणा मयंक जी को गाँधी जी, भगत सिंह, सुभाष चन्द्र बोस जैसे महान नायकों से मिली। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता, सामाजिक समानता एवं व्यक्ति स्वातन्त्रय की भावना का उद्‌घोष उन्होंने क्रान्तिकारी स्वरों में तीव्रता से किया। कवि गाँधी जी के प्रति श्रद्धावनत थे, उन्होंने राष्ट्रीय जागरण के इस अग्रदूत को निम्नांकित शब्दों में श्रद्धांजलि अर्पित की है–

"वह था ऐसा एक फरिश्ता ,

था जिसका हर रूह से रिश्ता ,

आगे आने वाली सादियाँ ,

याद करेंगी वक़्ते गुज़िश्ता ,

रोजे कयामत तक गूंजेगा गाँधी का पैगाम ।

बापू, तुमको मेरा सलाम ।" [10]

राष्ट्रीयता की भावना से ओत–प्रोत कवि मयंक की वाणी मे ओज और हुंकार है, जो हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहते। कवि साम्राज्यवादी ताकतों को झिड़कते हुये कहता है–

निकलो मेरे घर से निकलो,

बड़े किरायेदार।

चले मोल लेने कागज से ,

सोने का संसार।" [11]

मयंक जी की कविताओं मे राष्ट्रीय भावना उदात्त रूप में प्रतिष्ठित है। स्वातन्त्रय रण हेतु कवि का हुंकार भरा जन आह्वान दृष्टव्य है–

"वीरों आज तुम्हें ललकारा, भगत सिंह बलिदानी ने,

वीरों आज तुम्हें ललकारा पानीपत के पानी ने ,

स्वर्गलोक से तुम्हें निहारा उस झाँसी की रानी ने ,

दूर देश से किया इशारा उस सुभाष सेनानी ने,

उन वीरों को दिया हुआ वह

कौल चुकाने कौन चलेगा ।" [12]

चिरप्रतीक्षित आजादी का जब शुभ दिन आया तो कोमल कवि हृदय से ये शब्द फूट पड़े–

"फहर फहर ओ भारत राष्ट्र पताका

तू आज गगन को छू ले ,

कितनी सदियों बाद आज यह शुभ मंगल दिन आया ,

जब स्वच्छन्द गगन में तूने अपना शीश उठाया ,

मिटे आज तेरे दर्शन से , सब संताप हमारे ,

यह अशोक का चक्र देखकर

विगत शोक सब भूले ।" [13]

सैकड़ों वर्षों की पराधीनता से मुक्त होने के बाद भारतीय जन साधारण ह्रदय आशाओं से परिपूर्ण थे। उनके लिए यह एक नया सवेरा था। पीढ़ियों साम्राज्यवाद एवं सामन्तवाद का दंश भोगने के बाद जनसाधारण सामन्ती पराधीनता से मुक्ति की आशा में कवि मुख से यह कह उठा–

"आज निर्बलों ने बल पाया,

सूखे खेतों ने जल पाया ,

भारतीय नग्ना ललना ने ,

तन ढकने का अंचल पाया ,

जर्जर कंकालों के मुख पर छायी अरूणाई तरूणाई

वे पददलित किसान आज तक,

जो दुःख सहते थे मन-मारे ,

आग बरसी थी खेतों में ,

जिनके पेटों में अंगारे ,

उनके जीवन में आशा की शीतल मेघ-मालिका छाई ।" [14]

आजादी मिलने के तुरन्त बाद नेहरू जी ने घोषणा की कि राष्ट्र के लिए सबसे जरूरी काम है गरीबी, अज्ञानता, बिमारी और अवसरों की असमानता दूर करना परन्तु युगों से सामाजिक ढाचें को खोखला कर रहीं सामन्तवाद जैसी सामाजिक बुराइयों की जड़े काटना सिर्फ घोषणाओं से ही संभव नही था। देश की रीढ़ कहे जाने वाले किसान मजदूरों की दयनीय स्थिति पर कवि मर्मस्पर्शी स्वर में कहता है–

"यह खेतो का देश जिसे अपने खेतों पर नाज है ,

आज यहाँ का बच्चा-बच्चा दानों को मोहताज है ,

अन्न बिदेसी मन्न बिदेसी कैसा देसी राज है ,

पतझर द्वारे हाथ पसारे खड़ा आज ऋतुराज है ,

अभी-अभी उतरी थीं किरनें , आई कैसी आंधियाँ,

जिनके कारन राजकमल की सूख गयीं पंखड़ियाँ रे।" [15]

देश में जड़े जमा रहे भ्रष्टाचार तथा अराजकता के विरूद्ध भी कवि ने स्वर बुलंद किया है। वर्तमान समय में आबो–हवा में धुला ये जहर आम बात लग सकती है, परन्तु विवेच्य कवि और काल के संदर्भ में ये बातें नयी थीं और पराधीनता के भंवर से निकले देश में जनसाधारण इन स्थितियों के प्रति अपने को ठगा सा महसूस कर रहा था। ऐसे में कवि कुछ हिसंक भी हो जाता है–

"गम उसको कम होगा जिसको,

लूटा हो चोर-लुटेरों ने,

वह खून तड़पता रहता है,

चूसा हो जिसे कुबेरों ने,

जो भर दे आग हवाओं में, फूकें बारूद फिजाओं में,

जो घोलें जहर दवाओं में, उनको चुन दो दीवारों में ।" [16]

भ्रष्टाचार का कोई रूप एवं शोषण का कोई प्रयास कवि की पैनी दृष्टि से बच नही सका है। शिक्षा को कुत्सित व्यवसाय में तब्दील होता देख एक शिक्षक विद्रोह करने से खुद को रोक नहीं सका–

"विद्या बिकती दुकानों में,

देखा देवालय में ताला,

विद्यालय में रह गयी नकल,

हो गया अकल का दीवाला,

धरती पर अश्रु रक्त मदिरा के ही सागर लहराते हैं,

घी दूध की नदियाँ, जा पहुंची चाँद सितारों में।" [17]

स्वतन्त्रता संग्राम के नायकों का जीवन स्वप्न था 'आजादी'। जब देश आजाद हुआ तो प्रत्येक देशभक्त भारतीय की आँखो में खुशहाल भारत की कल्पना थी परन्तु जल्दी ही भारत का प्रत्येक नागरिक जान गया कि देशभक्तों ने जिस भारत की कल्पना में खुद को बलिदान किया है, उनका बलिदान व्यर्थ हो गया है, और कवि देश की दुर्दशा पर कह उठता है–

"यह कैसी आजादी देखी, सभी तरफ बरबादी देखी,
अपनी आंखों से अधनंगी, भिखमंगी शहजादी देखी,
जिसके अधरों पर आहें हैं, दर्द रचा मुस्कान में।" [18]

मनुष्यता के ऐसे पराभव को देख कवि स्वयं अपने कर्म के प्रति तिरस्कार से भर उठता है–

"तुझे न ईसा और मुहम्मद,
तुझे न गौतम बुद्ध चाहिये,
और चाहिये तुझे न गाँधी,
तुझे अनवरत युद्ध चाहिए,
ओ विनाश के भक्त तुझे क्यों
कवि विकास के गीत सुनाये।" [19]

इन स्थितियों में भी मयंक जी ने अपने गीतों द्वारा जन जागृति का निनाद करते हुए नव निर्माण एवं राष्ट्रीय एकता का संदेश दिया है–

"अब इन्द्रधनुष के रंग भरो,
सूखी मुरझाई कलियों में,
किरनों के फूल खिलाओं अब,

सुनसान अंधेरी गलियों में,

रोती तकदीरों को बदलों, घायल तस्वीरों को बदलो,

अब गलते हुए आंसुओं को, बदलो जलते अंगारों में।'' [20]

मयंक जी लक्ष्यभेदी दृष्टि एवं भाषा के स्वामी थे। सौन्दर्य, प्रेम एवं नारी जैसे विषयों की अपेक्षाकृत व्यक्ति, समाज एवं राष्ट्र जैसे विषयों एवं उनकी समस्याओं के प्रति उनका हृदय ज्यादा उद्वेलित एवं आन्दोलित होता था। समूचे राष्ट्र को वे एक सूत्र में पिरोया हुआ देखना चाहते थे और इस एकत्व भाव की प्रेरणा भी वे अपने ही तरीके से देते हैं –

''एकता संगठन ही शक्ति है इस जीवन में,

समूह शक्ति नहीं, शक्ति है अनुशासन में,

बूंद वन बिखरो न, बादल की तरह छा के चलो।'' [21]

राष्ट्रीयता की भावना ऐसी युग भावना थी, जो तत्कालीन परिस्थितियों के कारण उत्पन्न होकर विकसित हुयी थी। भारतेन्दु काल से लेकर छायावादी युग तक की राष्ट्रीय भावना के विकास को लक्षित करते हुए डॉ० केसरी नारायण शुक्ल ने कहा है, 'प्रथम उत्थान वाग्विलास का युग था, जब कवि अपनी वाणी से जनता को देशोन्नति के लिए आमंत्रित करते थे। द्वितीय उत्थान संघटन का समय था और आज का समय कार्य का है। इससे राजनीतिक चेतना की क्रमिक उन्नति लक्षित होती है।'[22] डा० शुक्ल ने जिस युग को दृष्टिगत रखते हुये राष्ट्रीय भावना के उपरोक्त विकास क्रम को नियत किया है, उसका एक महत्वपूर्ण एवं सबसे बड़ा लक्ष्य स्वतंत्रता प्राप्ति था। इस लक्ष्य की प्राप्ति के उपरान्त राष्ट्रीय भावना के विकास क्रम को और आगे बढ़ाते हुये यह कहा जा सकता है कि राष्ट्रीय भावना जनकल्याणोन्मुखी हो गयी तथा इसने अन्य राष्ट्रीय समस्याओं के निराकरण से अपने सरोकर जोड़ लिए। विवेच्य कवि के गीतों में राष्ट्रीय

भावना के विकास का यह क्रम भली भांति लक्षित हुआ है।

मयंक जी ने युगीन भावनाओं एवं समस्याओं का स्पष्ट चित्रण किया है। अत्याचार, दमन एवं उत्पीड़न ने उन्हें विद्रोही स्वर प्रदान किये। उनके काव्य में दलितों के प्रति करुणा और अत्याचारियों के प्रति आक्रोश है। वे बड़ी व्यग्रता के साथ अत्याचारों और दमन से मुक्ति दिलाने के लिए विद्रोहात्मक मार्ग अपनाते हैं। उनकी कविताओं में जनकल्याण के सबल तत्त्व विद्यमान हैं। उनके स्वरों में विध्वंसात्मक वेग एवं आक्रोश है। आवेशमयी किन्तु सरल, सहज भाषा में उन्होने क्रान्तिकारी स्वरों को अभिव्यक्ति देकर अपनी सामाजिक व राष्ट्रीय चेतना का परिचय दिया है। मयंक जी के गीत उनके राष्ट्र प्रेम के सशक्त प्रमाण हैं। उनके राष्ट्रीय गीतों में राष्ट्रीय नव निर्माण का आह्वान, शान्ति, प्रेम, समता, स्वतन्त्रता और मानवता का संदेश भी मिलता है।

सामाजिक-चेतना

मयंक जी के काव्य में सामाजिक चेतना उनके प्रारम्भिक काव्य मे ही दिखायी देने लगी थी। मयंक जी की प्रथम काव्य–कृति 'रूप रागिनी' में इसकी स्पष्ट अभिव्यक्ति देखी जा सकती है, किन्तु यह तो प्रारम्भ था। आगे चलकर 'जनता ही अजन्ता है' की अनेक रचनायें सामाजिक विषमताओं का सजीव चित्रण करती हैं। मयंक जी के काव्य का अवलोकन करने से यह स्पष्ट हो जाता है। कवि के अनुसार भ्रष्टाचार एवं सामाजिक विषमता ही समस्त सामाजिक समस्याओं का मूल है और समस्त विसंगतियों का उन्होने यथार्थ चित्रण किया है। मयंक जी ने सामाजिक विषमताओं को क्रान्ति द्वारा समाप्त करने का समर्थन भी किया है एवं अपने गीतों के माध्यम से जनसाधारण को क्रान्ति हेतु प्रेरित किया है। उनके अनुसार जीवन की सफलता, आशा और आस्था संघर्ष पर निर्भर है। साथ ही उन्हें यह आशा भी है कि एक न एक दिन समस्त सामाजिक समस्याओं का हल जरूर मिल सकेगा।

मयंक जी का काव्योदय उस युग में हुआ था जब भारतीय समाज जाति, वर्ग एवं धर्म की संकीर्ण भावनाओं से त्रस्त था। आर्थिक विषमता और वर्ग वैषम्य के कारण समाज मे क्षोभ एवं असंतोष व्याप्त था। स्वतंत्रता प्राप्ति के जश्न में कवि विह्वल समाज को आगाह करता है–

"अगणित अधरों पर आशा के,
नव हेमन्त-शिशिर मुस्काएय
कोटिक कंठों को बसन्त ने,
सुन्दर सुमन-हार पहनायेय
किन्तु अभी कितने ही नीरव
नयनों में बरसात शेष है।" [23]

ब्रिटिश बेड़ियों से मुक्ति के बाद एक नयी सामाजिक क्रान्ति का भार आजाद भारत के कन्धों पर अभी शेष था, जिसे उतारे बिना सही मायनों में स्वतन्त्रता की स्थापना नहीं हो सकती थी। कवि को यह आशा है कि देश का भविष्य 'युवा वर्ग' इस क्रान्ति का रचनाकार हो सकता है और सुन्दर उपसंहार भी लिख सकता है, इसीलिए कवि युवा वर्ग का आवाहन करते हुये कहता है–

"मुश्किल है जग में जीना,
आंसू वन बहे पसीना,
श्रम की उंगली में मुंदरी,
तरसे बिन कांच-नगीना,
श्रम की आरती उतारो,
पीड़ा के चरन पखारो,
आंसू के पहरेदारों,
दुःख का गोवर्धन धारो ।" [24]

मयंक जी युगीन चेतना से अनुप्राणित कवि है। समकालीन समस्याओं एवं विषमताओं पर उनकी लेखनी खूब चली है, मयंक जी स्वस्थ भारत के निर्माण का स्वप्न देखते थे और इस उद्देश्य की प्राप्ति के लिए व्यक्ति एवं समाज का वैचारिक एवं व्यवहारिक रूप से स्वस्थ होना अत्यन्त आवश्यक था। मयंक जी इस सामाजिक शिक्षा के महत्त्व को जानते थे, अतः काव्य के माध्यम से उन्होने जन–जागरण का जैसे बीड़ा ही उठा लिया था–

"अट्टहास कर रही है ऊँची हवेली,

झोपड़ी सिसक के मल रही है हथेली;

यक्ति बिक रहा जहां दुकान है समाज,

राज्य प्रश्न चिन्ह, राजनीति पहेली ;

जिन्दगी का मेला है, मेल स्वार्थ का,

मौत के सफर मे हर सांस अकेली।" [25]

और

"अभी खुली बेड़ियां पाँव की,

अभी महावर रची नही,

अधरों को मुस्कान मिली,

आँसू को आई हंसी नहीं,

कहती है भारत माता,

गंगा का पानी गाता,

हथकड़ियाँ तो टूटी लेकिन कंगन अभी नहीं आया।" [26]

काव्य सृजन के प्रारम्भिक काल से ही मयंक जी की काव्य चेतना सामाजिक सरोकारों से गहराई से सम्बद्ध रही है। उनका अधिकांशतः काव्य इसी भावना के वशीभूत रहा है। 'मेरा मनमोहन सांवरिया', 'अब भी दिल्ली दूर है', 'टूट न जायें कड़ियां रे', 'कदम मिला के चलो', 'जागो हे राजकुमारों', 'फुलवारियों से तो पूछो', 'सावन अभी नही आया', 'रात शेष है', 'गीत की कोयल क्या गाये', 'आदमी तरस रहा है प्यार के लिये', 'दुनियां की तस्वीर', 'चाँद–चकोरी', 'मिट्टी–मिट्टी के लिये मिटी जाती है', ' मानव तेरे नग्न नृत्य से', 'अपने हिन्दुस्तान में', 'है शोर यही', 'आज की चाँदनी', 'मेघदूत से', 'जनता ही अजन्ता है', 'आया है सन्देश चाँद से', 'अरे चितेरे', 'मानव तेरे नग्न नृत्य से' आदि कवितायें इसका पुष्ट प्रमाण हैं।

मयंक जी का संपूर्ण काव्य उपरोक्त वर्णित विषयों से ही प्रेरणा पाता रहा है। उन्होने प्रकृति, नारी, मानव, राष्ट्रीयता एवं सामाजिक विषमताओं पर मर्मस्पर्शी और संयमित काव्य सृजन किया है। मयंक जी की स्पष्ट दृष्टि तद्युगीन परिस्थितियों से प्रस्फुटित हुयी है। यह उनके काव्य की प्रमुख विशेषता है कि उनकी दृष्टि व्यक्ति चेतना से लोक चेतना की ओर निरन्तर उन्मुख होती गयी है।

सन्दर्भ

1. 'संदेश तुम्हारे', रूप रागिनी, पृष्ठ–12।

२. 'संदेश तुम्हारे', रूप रागिनी, पृष्ठ–12।

3. 'रूपमि तेरा सिन्दूर बिन्दू', रूप रागिनी, पृष्ठ–38।

4. 'रहने दो प्रिये', अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–201।

5. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता ह, पृष्ठ–71।

6. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठः 70–71।

7. 'मेघदूत से', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–80।

8. 'जागो हे राजकुमारों', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–33।

9. ' मेघदूत से', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–79।

10. 'बापू तुमको मेरा प्रणाम', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–2।

11. 'निकलो बड़े किरायेदार', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–92।

12'. 'कौन चलेगा', रूप रागिनी, पृष्ठ–25।

13. 'फहर फहर', रूप रागिनी, पृष्ठ–24।

14. 'आज युगो के बाद', रूप रागिनी, पृष्ठ–22।

15. 'टूट न जायें कड़ियां रे', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठः 11–12 ।

16. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठः 70–71।

17. 'है शोर यही'– जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–71।

18. अपने हिन्दुस्तान में, जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–67।

19. 'मानव तेरे नग्न नृत्य से', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–66।

20. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–71।

21. 'कदम मिला के चलो'–जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–31।

22. डॉ0 केसरी नारायण शुक्ल; आधुनिक काव्य धारा, पृष्ठ–270।

23. 'रात शेष है'– जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–43।

24. 'जागो हे राजकुमारो', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–33।

25. 'आदमी तरस रहा है व्यार के लिये', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–53।

26'. 'सावन अभी नहीं आया', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–38।

अध्याय 3

अध्याय 3
भाव सौन्दर्य

मयंक जी के काव्य में 'सौन्दर्य' नारी एवं प्रकृति से सम्बन्धित रहा है। उनके काव्य में हम नारी एवं प्रकृति का समन्वित सौन्दर्य भी यत्र–तत्र देखते हैं। मयंक जी अत्यन्त सौन्दर्य प्रेमी कवि हैं, यदि हम उन्हें सौन्दर्यवादी कवि कहें तो कोई अतिशयोक्ति न होगी। सौन्दर्य से वे कभी नहीं तृप्त हुये। सौन्दर्य की अतृप्ति और उसकी प्राप्ति की तीव्र आकांक्षा के फलस्वरूप कवि में जो विक्षोभ एवं विद्रोह की भावना पनपी, उसकी परिणति राष्ट्रप्रेम में हुई।

मयंक जी के काव्य के अवलोकनोपरान्त भाव सौन्दर्य की दृष्टि से उनके कृतित्त्व को तीन भागों में विभक्त किया जा सकता है :

(1) विशुद्ध व्यक्तिगत अनुभूति से सम्बद्ध गीत, जिनका विषय प्रेम है, जिनमें संयोग तथा वियोग की अनुभूतियाँ प्रभावशाली ढंग से मुखर हुयी है, किन्तु उनका क्षेत्र सीमित हैं।

(2) सामाजिक गीत, जिनके माध्यम से कवि ने सामाजिक रूढ़ियों के प्रति, आर्थिक विषमताओं के प्रति एवं अमानवीय व्यवहारों के प्रति आक्रोश व्यक्त किया है।

(3) राष्ट्रीय भावनाओं से ओत–प्रोत गीत जिनमें राष्ट्र के प्रति संवेदनशील उद्‌गार व्यक्त हुये हैं तथा श्रेष्ठ एवं युग सृष्टा व्यक्तियों के प्रति आदर एवं श्रद्धा का भाव भी व्यक्त हुआ है।

अब हम उपरोक्त भूमिका के आधार पर मयंक जी के काव्य में उपरोक्त पहलुओं की विवेचना करेंगें।

1 प्रेम, प्रकृति एवं नारी

सौन्दर्य काव्य का अनिवार्य तत्त्व है। कवि का सौन्दर्यबोध ही काव्य सृजन की भाव भूमि निर्मित करता है। विवेच्य कवि अतिशय सौन्दर्य प्रेमी एवं रोमांसवादी कवि के रूप

में विख्यात हैं। उनका सौन्दर्य बोध प्रारम्भ में छायावादी संस्कारों से प्रभावित है किन्तु कालान्तर में उनकी सौन्दर्य दृष्टि में परिवर्तन हो गया है। कवि को नवीन माधुर्य स्रोतों एवं रूपाकर्षणों से प्रेरणा मिलती रही है। उनकी सौन्दर्य चेतना जीवन–सौन्दर्य और प्रकृति के प्रति स्पंदन से स्पंदित होती रही है। उन्हे महान दार्शनिक अरविन्द घोष के सौन्दर्यवाद ने भी अत्यधिक प्रभावित किया है। महर्षि अरविन्द के दर्शनानुसार कवि सौन्दर्य की शक्ति और प्रभाव में सत्य को व्यक्त करता है। कवि मयंक के गीतों का रचनाकाल छायावादोत्तर युग का है, इसीलिए विवेच्य कवि पर जहाँ छायावादोत्तर काल के कवि बच्चन का प्रभाव है, वहीं छायावाद के प्रमुख कवियों में महादेवी वर्मा, सुमित्रा नन्दन पंत एवं जयशंकर प्रसाद के प्रभाव को भी सहज में देखा जा सकता है। छायावाद के सन्धिकाल पर होने के कारण मयंक जी की रचनायें इस युग की विशेषताओं से पूर्णरूपेण प्रभावित एवं अनुप्राणित हैं। कवि के जीवन की परिस्थितियाँ भी गीतों की सर्जना मे अत्यन्त महत्त्वपूर्ण भूमिका अदा करती प्रतीत होती हैं। मयंक जी भी इस तथ्य का अपवाद नहीं थे। उन्होंने लिखा भी है–

"इनमें मेरे मन की भाषा,

मेरे जीवन की परिभाषा,

इनमें मेरा ह्रास रूदन है,

हर्ष विमर्श निराशा आशा,

यही हृदय के फूल यही हैं,

नयनों के छलकाये मोती।" [1]

कवि की प्रेमानुभूति सम्बन्धी कवितायें उनके प्रथम काव्य संग्रह 'रूप रागिनी' (1952 ई0) में मिलती हैं। इस सुकोमल भाव के संदर्भ में कवि का हृदय मर्मस्पर्शी

भावनाओं से भरा हुआ है। कवि ने प्रेम सम्बन्धी भावावेशमयी आत्मानुभूति का संतुलित शब्दों में चित्रण किया है।

मयंक जी के प्रेमानुभूति सम्बन्धी गीत संख्या मे कम अवश्य हैं, परन्तु वह प्रेम की गहन वेदना से ओत–प्रोत हैं। उनकी यह वेदना कृत्रिम नहीं, अपितु प्राकृतिक या नैसर्गिक हैं और उसमे सिन्धु की सी अतल गहराई है। वह एक दिन की नहीं है अपितु उसमें अविरल गति है एवं अविरल प्रवाह है। मयंक जी के प्रेमानुभूति सम्बन्धी ये अद्‌भुत गान आत्मपरक एवं अनुभूति प्रधान हैं। प्रेम का ऊँचा आदर्श सम्मुख रख कवि कहता है–

"रे नहीं है प्रेम वह जो

रूप को जाकर रिझाये

प्रेम का हो रूप ऐसा

रूप जिस पर रीझ जाये

रूप का अभिमान प्रेमी प्रेम का अपमान ही है।" [2]

विरह प्रणय की कसौटी है, प्रेम की सात्त्विक अनुभूति है और प्रेमी हृदय की सुकुमार भावना है। विरह के बिना न तो प्रेम का पूर्ण परिपाक होता है और न प्रणय की पूर्णता ही देखी जाती है। विरह मानव जीवन का चिर–सहचर है,क्योंकि अनादि काल से यह अन्यान्य भावो के साथ उपस्थित होकर सर्वाधिक प्रभावित करता चला आ रहा है, सर्वाधिक अनुरक्त बनाता चला आ रहा है और सर्वाधिक आसक्ति को उत्पन्न करता चला आ रहा है। कबीर ने **बिरहा है सुल्तान** कहकर इसी विरह की श्रेष्ठता का प्रतिपादन किया है। मयंक जी ने अपने गीतों मे इस विरह विगलित स्थिति का श्रेष्ठ चित्रण किया है, इसी प्रेम की तड़पन को गीतों में संजोया है और इसी पीड़ा को मुखरित किया है। मयंक जी की विरहानुभूति अत्यन्त उन्नत एवं उत्कृष्ट है उसमें प्रेम का आवेग है, वेदना का ज्वर है, व्यथा की हलचल है, पीड़ा का आन्दोलन है और व्यथित चित्त की पुनीत

क्रीड़ा है। अपने प्रियतम से बिछड़ी प्रिया के हृदय की पीड़ा का मर्मस्पर्शी उदाहरण दृष्टव्य है–

"सजनि आज ही उन्हे बुला दो,
या उर में उन्माद सुला दो,
भूल सकूँ सुध-बुध अपनी या
मन से मन की बात भूला दो
पिय के हिय में छिप जाने को
रोता है उर क्रन्दन मेरा।" [3]

और

"जहाँ उनके दर्शनों की
तृषित तृष्णा नाचती है
जहाँ पीड़ा से विकल हो
करूण करूणा नाचती है
प्रियतम की छवि झूल रही है
जिनमें वे लोचन देखूंगी।" [4]

प्रेमानुभूति की भीषण तीव्रता एवं गहरी सघनता यदि कवि की अनुभूतियों का अंग न होती तो कवि यह लिखने का विचार एवं साहस पैदा न कर सका होता कि–

"मैं तिमिर सघन तुम चन्द्रकिरण, मैं मधु तुम मधु की मादकता,
मैं हूँ चातक का करूण कण्ठ, तुम हो क्रन्दन की आकुलता
मैं मूर्ति बनूँ तुम स्फूर्ति बनो
मैं देह बनूँ तुम प्राण बनो।" [5]

इस प्रकार मयंक जी की प्रेमानुभूति में गहन प्रेम वेदना का गांभीर्य भरा हुआ है, वह करूणा से ओत–प्रोत है, उसमें नैसर्गिक भावों की सरिता बह रही है, उसमें अन्तःकरण की विविध कामदशाओं की क्रीड़ा भरी हुयी है, वह विरह की आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है, उसमें भक्ति भावना की तन्मयता भरी हुयी है और वही कवि के सदय ह्रदय में अजस्र गति से प्रवाहित हो रही है–

"अभी खोजती हूं रज कण में
अपने प्रणय स्वर्ण की रेखा
किन्तु स्वर्ण पाकर रज कण की
ओर विश्व मे किसने देखा
सपनो की दुनिया ही देना
सोने का संसार न देना ।" [6]

आधुनिक युग की हिन्दी कविता में करुणा की भावना का अत्यधिक संचार हुआ है। यह भावना गीतियों के लिए सर्वथा उपयुक्त है, क्योंकि उनमें परूष भावनाओं का समावेश होता ही नहीं। इसी करुणा के प्रभाव के कारण ही प्रेम के क्षेत्र में मिलन की अपेक्षा विरह के दृश्य ही अधिक दिखायी देते हैं। इसी भावना के वशीभूत होकर अनेक कवियों की भाँति मयंक जी को भी विरह और पीड़ा से मोह हो गया है और वे चिर अतृप्ति के आकांक्षी हो गये हैं–

"सो जाऊं सुधि करते करते
आने लगे स्वप्न जब सुन्दर
मदिर मदिर नूपुर ध्वनि करती
चुपके से आना पलको पर

किन्तु दृगों में ही खो जाना

जब अधीर होकर मैं जागूं।" [7]

मयंक जी जिस युग के कवि हैं वह हिन्दी साहित्य में छायावादोत्तर काल के नाम से जाना जाता है। प्रेम सम्बन्धी छायावादी मान्यतायें एवं अभिव्यक्तियाँ इस काल में एक –एक कर दम तोड़ रही थी। इस काल में प्रेम का स्वरूप मर्यादाविहीन तथा अधिक वासनामय हो उठा। नरेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, अंचल आदि कवियो ने ऐसी गीतियों की सृष्टि की जिनसे कामुकता की गंध आने लगी। उत्तर छायावाद काल में प्रगतिवाद तथा प्रयोगवाद नामक धाराओं ने हिन्दी साहित्य को सर्वाधिक प्रभावित किया। छायावाद युग के गीतकारों ने भी अपने गीतो में प्रणय लीलाओं का वर्णन किया था; लेकिन उन्होंने कामवासना को उचित परिष्कृत स्वरूप प्रदान करने के अनन्तर ही पाठको के समक्ष रखा था, जबकि प्रगतिवादी कवि प्रकृत वासनाओं के गोपन को हानिकर मानते थे, और क्षुधा, काम आदि के प्रकृत रूप को व्यक्त करना अपना कर्तव्य समझते थे। वे दमन को निरर्थक समझते थे और फ्रायड के सिद्धान्त में पूर्ण विश्वास रखते थे। उनके जीवन के वाह्य पक्ष पर मार्क्स का अधिकार था तो अन्तः पक्ष पर फ्रायड का। इसी भाँति दूसरी तरफ प्रयोगवादी कवि थे जो अहंवाद से अधिक आक्रान्त थे और जिनकी रचनाओं में सामाजिकता का अभाव था। ऐसे कवियों में अज्ञेय जी अग्रणी थे। इन कवियों ने विषय की समग्रता को चित्रित करने की चेष्टा की और उसकी विशेषता का विस्तारपूर्वक चित्रण निरर्थक माना; क्योंकि इनके अनुसार किसी भी वस्तु का वास्तविक स्वरूप उसके समग्र चित्रण से ही पाठकों के समक्ष उमड़ सकता है।

अपने समय की इस उथल–पुथल के विपरीत कवि मयंक का मौन व्यक्तित्त्व ऐसे गीतों की रचना में संलग्न था, जो अपने युग की उपरोक्त विशेषताओं से साम्य नहीं रखते थे। उनके प्रेमानुभूति सम्बन्धी गीत छायावाद से अधिक प्रभावित प्रतीत होते हैं। संख्या की

दृष्टि से उल्लेखनीय न होने के बावजूद मयंक जी के प्रेमगीत, गीतकाव्य में सर्वोत्कृष्ट स्थान रखतें हैं। उनके गीतों में सहज स्वाभाविकता है एवं वैयक्तिक साधना की प्रबलता है। मयंक जी के गीतों में अनुभूति, भावना एवं कल्पना की त्रिवेणी प्रवाहित हो रही है। उनके गीत न तो दार्शनिकता के दुर्वह बोझ से पीड़ित हैं और न बौद्धिकता के असाध्य अजीर्ण से तुन्दिल हैं। इनमें मूक वेदना एवं एकाकी पीड़ा का अजस्र स्रोत प्रवाहित हो रहा है। इनमें करूणा की अविरल धारा बह रही है और इनमें एकाकी जीवन की शून्यता विराजमान है। मयंक जी के इन गीतो में सामवेद का सा मधुर गान भरा है, जयदेव की सी कोमल भावना भरी हुयी है, विद्यापति की सी मधुर कल्पना विद्यमान है और मीरा की सी आत्मानुभूति विराजमान है। मयंक जी के प्रेमगीतों में मानवीय कोमल भावनाओं की मध ुर अभिव्यन्जना हुयी है और विरह की मूक वेदना अथवा प्रेम की मूक पीड़ा अत्यन्त मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त हुयी है। मयंक जी के ये गीत अपनी स्वाभाविकता, सरसता, रोचकता, रागात्मकता एवं प्रतीकात्मकता मे अद्वितीय है। ये पूर्णतया सहृदय संवेद्य है, अखण्ड चेतना से संपृक्त है। अनुभूति की निश्चलता से ओत–प्रोत है और आत्मनिवेदन के अलौकिक रस से परिपूर्ण हैं। मयंक जी की प्रेम सम्बन्धी मान्यताओं को देखने के उपरान्त उनके प्रकृति एवं नारी विषयक दृष्टिकोण से अवगत होना आवश्यक है। इस सम्बन्ध में पूर्व स्थापनाओ का अवलोकन भी अनिवार्य प्रतीत होता है।

हिन्दी साहित्य के आदिकाल में कथा–काव्यों तथा गीत–काव्यों दोनों में नारी को अत्यधिक महत्त्व प्राप्त था। उसे पाने के लिए राजा–महाराजा, एक दूसरे पर आक्रमण करते थे सेनायें नष्ट होती थीं। उन दिनों सभी लड़ाइयों की जड़ में नारी का होना आवश्यक था और इसीलिए अनेक स्थलों पर ऐतिहासिक तथ्यों की उपेक्षा करके भी स्त्री को युद्ध का कारण बताया गया है। यह कहने की आवश्यकता नहीं कि उन दिनों कवि नारी को बड़ी ही लालसापूर्ण दृष्टि से देखते थे और उसके रूप वर्णन में अपनी प्रतिभा

का खुलकर प्रयोग करते थे, लेकिन धीरे–धीरे यह दृष्टिकोण बदलने लगा। हिन्दी के साधकों को उससे दूर रहने की शिक्षा दी। आगे चलकर हिन्दी के सन्त कवियों ने उसे सहज अपावन माना और कही कही उसकी घोर भर्त्सना तक की गयी। सर्वविदित है कि ऐसी ही उक्तियो के कारण तुलसीदास जी आज नारी द्रोही माने जाते हैं। ऐसा भी नहीं है कि इन कवियों ने नारी के रूप वर्णन या उसकी विशेषताओं के उल्लेख में कृपणता की है। इन्होंने यह सब बड़े मनोयोग से किया है और इसीलिए उनकी आदर्श नारियाँ मानवी से देवी बन गयी हैं, जैसे– गोस्वामी तुलसीदास की सीता। परन्तु साधारण नारियों के प्रति इनका दृष्टिकोण भिन्न रहा है। वे इनके प्रति कठोर रहे हैं, इस प्रकार हम देखते हैं कि भक्तिकाल में नारी ने वह स्थान खो दिया था जो उसे वीरगाथाकाल के साहित्य में प्राप्त हुआ था।

रीतिकाल का सम्पूर्ण साहित्य नारी को केन्द्र मानकर उसके चारों ओर चक्कर लगाता हुआ प्रतीत होता है। नायिका–भेद की बारीकियों का उद्‌घाटन करना, नारी रूप के लिए नवीन और चमत्कारपूर्ण उपमानों की सृष्टि करना, और नारी के प्रति अतिशय स्थूल वासनापूर्ण भावना का प्रचार करना ही तत्कालीन कवियों का कवित्व था। अपने विलासी आश्रयदाताओं की मानसिक रति की तृप्ति हेतु उपकरण जुटाने में ही इन कवियों की प्रतिभा सर्वदा तल्लीन रही और इसीलिए इन दिनों नारी को काम क्रीड़ा की वस्तु मात्र माना गया। विलासिता में डूबा हुआ इन दिनों का ज्यादातर पूरा साहित्य जातीय गौरव से हीन और जीवन शून्य है। उन दिनों देव जैसे महान कवि ने भी पर–नारी की प्राप्ति को योग साधना से भी कठिन बताया था। नारी के प्रति यह कामुक दृष्टिकोण हिन्दी कवियों में कई सौ वर्षों तक बना रहा और बाद में आधुनिक काल में इसमें वांछित परिवर्तन हो सका।

आधुनिक युग में एक बार पुनः भारतेन्दु हरिश्चन्द्र ने नारी को स्वच्छ तथा परिष्कृत रूप प्रदान करके उसे ऊँचे सिंहासन पर प्रतिष्ठित किया; लेकिन उसके प्रति समानता का स्वस्थ दृष्टिकोण छायावादी कवियों में ही दिखायी पड़ा। इस काल में उसे रहस्यमय सौन्दर्य से वेष्टित कर जीवन संगिनी, माँ तथा देवी के रूप में देखा गया। उसके प्रति श्रृंगारपूर्ण उद्‌गार भी निकले; लेकिन वे उसके सम्मान को बढाने वाले थे। ये रीतिकालीन उक्तियों की भाँति उसकी श्री को मलिन करने वाले नही थे। इन कवियों ने नर–नारी के आकर्षण को सहज तथा स्वाभाविक माना और प्रेम में उत्सर्ग की भावना का समावेश हुआ; उन्होनें स्त्री को वासना तृप्ति का साधन मात्र नहीं समझा; बल्कि उससे अनेक उदात्त प्रेरणाऐं भी प्राप्त कीं। वह जीवन संगिनी बनी, अंधकारपूर्ण जीवन मे आशा की किरण बनी और उसके प्रेम में पवित्रता की विशेषता लक्षित हुई। छायावाद के उत्तर काल मे अनेक कवियों ने नारी को पुनः कामुकों की दृष्टि से देखना प्रारम्भ किया। प्रगतिवाद का प्रचार होने के साथ तो यह दोष इतना बढ़ गया कि लोगों ने उसे भावनाहीन और कामवासना की पूर्ति का साधन मात्र मान लिया। प्रयोगवादी कवियों ने भी स्त्री को जिस दृष्टि से देखा है, उसमें रूप–मोह तथा भोग–लालसा का अभाव नहीं है। इससे खिन्न होकर महादेवी वर्मा ने कहा है– 'आज की परिस्थितियो में अनियंत्रित वासना का प्रदर्शन स्त्री के प्रति क्रूर व्यंग्य ही नहीं, जीवन के प्रति विश्वासघात भी है।'[8]

मयंक जी का प्रथम काव्य संग्रह 'रूप रागिनी' 1952 ई० में प्रकाशित हुआ था। इसलिए यह स्वाभाविक ही है कि उनमें एवं उनके काव्य में छायावाद एवं छायावादोत्तर काल का युगीन प्रभाव प्राप्त हो। मयंक जी में छायावादी रोमांसवाद तो मिलता है परन्तु छायावादोत्तर काल में सौन्दर्य एवं नारी विषयक दृष्टिकोण में आया परिवर्तन उनके काव्य एवं उनकी प्रतिभा को विकृत नहीं कर सका एवं उनका उदात्त काव्य लोकरंजन तथा लोकशिक्षण के ध्येय के साथ विद्यमान रहा। प्रेम की जो पवित्रता एवं सप्राणता छायावाद

युग में विद्यमान थी एवं छायावादोत्तर काल में जिसका लोप हो गया था। वह मयंक जी के काव्य मे विद्यमाान रही और इस संदर्भ में वे अपने आपको युगीन प्रभाव से मुक्त किये रहे।

छायावादी प्रभाव के कारण प्रारम्भिक काव्य में कवि ने प्रकृति को अपरिमेय असीम सत्ता के रूप मे देखा है, किन्तु उनकी प्रकृति इतनी भी रहस्यमयी नहीं है कि उसमें जीवन का स्पदंन ही न हो। प्राकृतिक सौन्दर्य उनकी आन्तरिकता से सम्बन्धित है। वे प्रकृति में जीवन का स्पंदन अनुभव करते हैं और सौन्दर्य को अपने में समाहित करने का यत्न भी उन्होंने किया है–

"मंजुल मंजुल सुन्दर सुन्दर
रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु
निशि सी काली अलकें समेट
ओढ़ा अरूणोदय सा अंचल
मध्यस्थ धवल सरिता तट पर
निकला हंसता रवि बाल विमल
उज्जवल जल को प्रतिबिम्बित कर
रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु।" [9]

कवि की सौन्दर्य चेतना कालान्तर में परिवर्तित होती है, वे कल्पनालोक की वायवीयता को त्यागकर यथार्थ की भावभूमि पर लौट आते हैं एवं जीवन से सम्बन्धित व्यापारों में अवस्थित सौन्दर्य की खोज करते हैं। उनका रुझान वास्तविकता की ओर बढ़ने लगता है। उनकी दृष्टि में रहस्य एवं अलौकिकता का कोई स्थान नहीं रह जाता। वे प्राकृतिक सौन्दर्य से वशीभूत हुए थे, परन्तु अब वे प्रकृति रूप में ग्रहण करते हुये उसे

अपूर्व सुन्दरी, जीवन की अनन्त रागिनी एवं जीवन सहचरी प्रिया के रूप में देखते हैं। मयंक जी ने प्रकृति पर चेतन नारीत्व का आरोप करके काव्य में नवीनता की सृष्टि की। उनकी प्रकृति में यौवनगत विलास है। उसका नैसर्गिक सौन्दर्य उनकी भवनाओं को उद्वेलित करके प्रखर पिपासा को जाग्रत करता है। प्राकृतिक सौन्दर्य उनकी सौन्दर्यानुभूतियों का सबल माध्यम भी बना है। कवि ने प्रकृति को माध्यम बनाकर अपने वैयक्तिक हर्ष, उल्लास, विषाद, प्रेम और करुणा को बड़ी सजीवता से व्यक्त किया है।

प्रेयसी के प्रति अत्यधिक सौन्दर्यासक्ति होने के कारण कवि ने प्रकृति को भी नारी सुलभ उद्भावना से रूपायित किया है। नारी सौन्दर्य को प्रकृति के अपरिमित सौन्दर्य में चित्रित करने में उन्होंने अपनी अपूर्व कल्पनाशीलता का परिचय दिया है–

"आज मानों भूमि पर ही उदित मंजु मयंक पाया
शशि कलंकित है तुम्हें पर सर्वथा अकलंक पाया
आज चकित चकोर था शशि से भरा निज अंक पाया
उस अतुल छवि राशि पर जब कर दिया सर्वस्व अर्पण।"[10]

प्रकृति सम्बन्धी सौन्दर्य का चित्रण वहाँ अधिक विशिष्टता से हुआ है जहाँ कवि की मार्मिक संवेदनाओं की सबल अभिव्यक्ति हुयी है। प्रकृति के विविध–विविध परिवर्तित रूप उनकी भावनाओं को उद्दीप्त करके प्रेयसी की सुधि दिलाते हैं वे प्रिया की सुन्दर छवि को प्राकृतिक सुषमा में देखते हैं। समस्त प्राकृतिक सौन्दर्य उनकी प्रिया की सौन्दर्य आभा से मण्डित है। उसकी सौन्दर्य छटा प्रकृति रूप में अपूर्व शोभा–सुषमा के साथ मुकुलित हुयी है। अपनी रूपात्मक जिजीविषा को उन्होंने रागात्मक मार्मिक संवेदनाओं के साथ अभिव्यक्त किया हैं। इस प्रकार के रूपांकनों की अभिव्यक्ति में कवि मार्मिक संवेदनायें देखते ही बनती है–

"व्यर्थ बहती रही आंसुओं की नदी,

प्राण, आये न तुम नेह की नाव में,

खोजते - खोजते तुमको लहरें थकी,

अब तो छाले पड़े लहर के पाँव में,

करवटें ही बदलती नदी रह गयी,

तुम न आये, किनारों को नींद आ गयी।" [11]

मयंक जी ने सौन्दर्य के आन्तरिक एवं वाह्य पक्षों में आन्तरिक पक्ष को अपनाया है। सौन्दर्य के विषय में भारतीय और पाश्चात्य दोनों दृष्टिकोणों के प्रतिफल रूप यह कहा जा सकता है कि सौन्दर्य वह भावना है; जिसमें मानव मन में निहित भावनायें मनोरम रूप में व्यक्त होती हैं, जो आत्मा को सन्तोष एवं आनन्द प्रदान करती हैं सौन्दर्य के जो भेद किये गये हैं– उसमें वाह्य पक्ष के अन्तर्गत नारी के मांसल सौन्दर्य को ही विशेष महत्त्वपूर्ण माना गया है, जिसमें उसके रूप सौन्दर्य का वर्णन होता है। सौन्दर्य के आन्तरिक पक्ष में मांसलता के स्थान पर नारी के गुणों का ही विशिष्ट महत्व होता है। आन्तरिक सौन्दर्य वाह्यकर्षण से उठकर भावनाओं मुक्त परिवेश में परिलक्षित होता है। मयंक जी की सौन्दर्यपरक रचनाओं में मुक्त परिवेश को ही प्रधानता मिली है–

"मेरे नयनों के द्वार खोल

उर में कोई अति मौन गया

जब दृग में डोरे लाल मिले

मैंने पहचाना कौन गया

छू गया कदाचित दृग तल पर

रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु।" [12]

('मयंक जी की सौन्दर्याभिव्यक्ति में छायावादी सौन्दर्यांकन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वे प्रकृति के माध्यम से नारी सौन्दर्य के आकर्षण एवं मादक रूप का चित्रण करने में पूर्ण सफल हुए हैं–

"रात आयी महावर रचे सांझ की,

भर रहा मांग सिन्दूर सूरज लिये,

दिन हँसा, चूड़ियां लेती अंगड़ाइयाँ,

छू के आँचल बुझे आंगनों के दिये,

बिन तुम्हारे बुझा आस का हर दिया,

तुम न आये, सहारों को नींद आ गयी।" [13]

सौन्दर्य ऐसा गुण है जिसका प्रारम्भ आकर्षण एवं परिणति प्रेम है ; जब व्यक्ति वाह्य धरातल को त्याग कर अन्तर में प्रविष्ट होता है, तब सौन्दर्य की ऐसी उदात्त भावना उसके अन्तर को भी सौन्दर्यपूर्ण बना देती हैं ; जहाँ सौन्दर्य की भावभूमि पर पहुँचकर मन की कलुषता स्वतः धुल जाती है। मयंक जी का सौन्दर्य का तीसरा रूप प्रकृति चित्रण में निहित होता है। मयंक जी ने अनेक स्थलों पर प्रकृति का अत्यन्त मनोहारी चित्रण कर इस रूप के अभाव को भी पूरा कर दिया है–

"रहने दो प्रिये नींद के ये झूठे बहाने,

देखो तो अभी चाँद सितारे नहीं सोये।

है चाँदी का पालना, किरनों की है डोरी,

तारे मचल रहे हैं, गगन गा रहा लोरी,

रुक - रुक पवन झुला रहा दे-दे के थपकियाँ,

रजनी के मगर राजदुलारे नहीं सोये।" [14]

सौन्दर्य के उदात्त रूप में त्याग और समर्पण का विशेष स्थान है। यही समर्पण अपनी विकसित अवस्था में प्रेम, स्नेह, प्रीति, अनुराग और भक्ति का पर्याय बन जाता है। मयंक जी की रचनाओं में यही समर्पण स्थान–स्थान पर दिखायी पड़ता है–

"मेरी अन्तिम दृष्टि तुम्हारा सुन्दर रूप निहार ले ,

मेरे आँसू का अन्तिम कण तेरे चरन पखार ले।

अन्तिम हिचकी का स्वर तेरी पायल को झंकार दे,

अन्तिम रक्त-बिन्दु मेंहदी बन रचे तुम्हारे पाँव में ।" [15]

प्रेम वह मार्ग है, जिसमें से प्रवाहित होने वाली हर रंग की किरण अपना वैशिष्ट्य रखती है। निश्चय ही कवि की समर्पण की महत्ता प्रतिपादित करने वाली ऐसी पंक्तियाँ स्पृहणीय है–

"व्यर्थ बहती रही आंसुओं की नदी,

प्राण, आये न तुम नेह की नाँव में,

खोजते-खोजते तुमको लहरें थकीं,

अब तो छाले पड़े लहर के पाँव में,

करवटें ही बदलती नदी रह गयी,

तुम न आये, किनारों को नींद आ गयी।" [16]

करुणा कविता का वरदान है। वैयक्तिक जीवन में कवि जिस वेदना की अनुभूति अन्तःस्थल में करता है वही उसके संवेदनशील संतृप्त ह्रदय से निःसृत होकर मधुर स्वर सरिता की धारा बन जाती है। यही करुणा जब सृष्टि के कोटि–कोटि प्राणियों को ममता की अश्रुविगलित आत्मीय श्रृंखला में बांधकर रस वर्षा करने लगती है; तभी लोक–मंगलमय मधुरतम गीतों की सृष्टि होती है। विश्व साहित्य के श्रेष्ठतम गीत वेदना की ललित लेखनी से ही लिखें गये है। यही वेदना ही मयंक जी की रचनाओं का प्राण तत्त्व है।

कवि का वातावरण एवं पारिवारिक संस्कार का बहुत कुछ प्रभाव उसकी कृतियों से भी उद्भासित होता रहता है। विरक्त सन्यासी जैसा गंभीर एवं एकान्त चिन्तन में आत्मलीन अपने आप में खोया हुआ मयंक जी का व्यक्तित्व उन्मुक्त हास्य जैसे जानता ही नहीं था। मयंक जी की इस वेदना का स्रोत बहुत अंश में उनका पारिवारिक जीवन रहा। विधि ने एक–एक करके नौ संतानें उनसे छीन लीं और अन्ततः अन्तिम तीन पुत्रियों के अतिरिक्त कोई शेष नहीं बचा, सम्भव है कि यह आत्मलीन विरागवत उसी पारिवारिक अशान्ति की मूर्तिमयी प्रतिच्छाया हो और ये गीत उनके खारे हृदय सिन्धु के मन्थन से प्रादुर्भूत अलौकिक अमृत की बूंदें हों। यह वेदना उनके इन शब्दों में प्रकट भी हुयी है–

"प्यारे लगते चाँद - सितारे,

लेकिन फिर भी सबसे प्यारे,

वे तारे जो टूट गये हैं !

जीवन बीता गाते-गाते, गीतों के नवघन बरसाते,

हर आँसू को मोती कहकर, उसका रूप अनूप लुटाते,

हर आहत आह की आग पर, मधु पराग का रंग चढ़ाते,

छन्द विहग से उर में उठते स्वर के स्वर्ण पंख पा जाते,

लेकिन फिर भी सबसे प्यारे,

गीत वही अंतर तक आकर,

जो अधरों से रूठ गये हैं।" [17]

प्रत्येक मानव मन का सौन्दर्य से अभिभूत होना स्वाभाविक है। जब निरभ्र आकाश में चन्द्रमा अपनी धवल रश्मियाँ विकीर्ण करता हुआ ज्योत्सना से अठखेलियां कर उठता है तब कौन ऐसा भावुक हृदय होगा जो मनोरम आकांक्षाओं के किरण यान में बैठकर उड़ना न चाहता हो–

आज की चाँदनी जालिम बड़ी नशीली है,

आज का चाँद तो आंखों में गड़ा जाता है।

बैठकर आज किरन के उड़न खटोले में,

मन कहीं दूर बड़ी दूर उड़ा जाता है।" [18]

सौन्दर्य का भावात्मक संवेगों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध है। मयंक जी में रूप सौन्दर्य की चिर–तृष्णा असीम है, जो नारी एवं प्रकृति के सूक्ष्म बिम्बों में आवृत हुयी है। प्रकृति की शस्य–श्यामला–सुषमा को उन्होंने मानवी के रूप में चित्रित किया है। प्रकृति का असीमित सौन्दर्य नारी सुलभ उद्भावनाओं से चित्रित करने में कवि की अपूर्व कल्पना शीतल और कलात्मकता प्रशंसनीय है। नारी और प्रकृति को समन्वित करने में मयंक जी सिद्बहस्त हैं। वे कभी प्रेयसी की सुन्दर छवि को प्राकृतिक सुषमा में अंकित कर देते हैं, तो कभी प्रकृति के अपरिसीम सौन्दर्य को नारी सौन्दर्य के इतिवृत्त में समेटते दिखायी देते हैं। प्रकृति का आलम्बन पाकर कवि की अभिव्यक्ति में ऐन्द्रिकता और लौकिकता की स्फीति हुयी। अपनी जीवंत स्वच्छन्द संवेदनाओं को उन्मुक्त रूप से प्रकट करके उन्होंने स्वच्छन्द प्रवृत्ति का परिचय दिया। मयंक जी को वायवी अमूर्तता एवं कल्पना प्रसूत व्यंजना में कोई रूचि नहीं हैं। प्रकृति के मानवीकरण का एक सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है–

"कब तक तड़पे रात अंधेरी,

कब तक सिसकी भरें सितारे,

आज चाँद बनकर आ जाओं,

नील-गगन के आंगन-द्वारे।" [19]

मयंक जी की तीक्ष्ण कल्पनाशक्ति का एक और उदाहरण दृष्टव्य है–

"पत्तों की गोद में नयी कलियाँ तो सो गयीं,

रंगीन मधुर सपनों की गलियों में खो गयीं।

कुछ फूल तड़पते रहे कांटों की सेज पर,

बेचारे अभी दर्द के मारे नहीं सोये।" [20]

रात, साँझ, सूरज, दिन, आंगन आदि के मानवीकरण का एक और सुन्दर उदाहरण प्रस्तुत है–

"रात आई महावर रचे साँझ की,

भर रहा माँग सिन्दूर सूरज लिये,

दिन हँसा, चूड़ियाँ लेती अंगड़ाइयाँ,

छू के आँचल बुझे आंगनों के दिये,

बिन तुम्हारे बुझा आस का हर दिया,

तुम न आये, सहारों को नींद आ गयी।" [21]

मयंक जी के सौन्दर्य बिम्बों में विरह की करुण वेदना है। कवि प्रिया की विरह वेदना को प्रकृति की अपरिमेय सुषमा में मंडित करके अपनी आन्तरिक तृषा को भी बड़ी सफाई से व्यक्त कर गये हैं–

"धूप की पालकी पर किरन की दुल्हन

आ के उतरी खिला हर सुमन हर चमन,

देखो बजती हैं भौरों की शहनाइयां

हर गली दौड़कर न्यौत आया पवन,

बस तड़पते रहे सेज के ही सुमन,

तुम न आये, बहारों को नींद आ गयी।" [22]

मयंक जी के काव्य में विविधरूपा प्रकृति को अनुभूतिजन्य स्तर पर घटित होता देखा जा सकता है। प्रकृति कवि के लिये मात्र शब्द कौशल का व्यापार नहीं वरन् उनकी जीवन्त अनुभूतियों के विस्तार का आधार है। वे प्रकृति को एक संवेदनशील प्रेमी की तरह

प्यार करते हैं। उनका प्रकृति के प्रति यह दृष्टिकोण मौलिक और नवीन है। प्रकृति के माध्यम से अपनी वृत्ति, रूचि, संवेग, स्नेह आदि का संश्लेषण और प्रकाशन उनके उत्कृष्ट सौन्दर्यबोध का परिणाम है।

मयंक जी के गीतों का अपना वैशिष्ट्य है। उनमें बड़ी चित्रात्मकता और आत्मीयता है। उनके गीतों का सुख–दुःख सीधे प्रेम पात्र को निवेदित है; बीच में न कोई अवधारणा आती है और न छल। उनके गीतों का एक परिवेश है और वह परिवेश सिर्फ कवि का नहीं बल्कि पाठकों का भी निकट परिचित है। यह तथ्य मयंक जी के अनुभवों को जीवंतता प्रदान करता है और कुल मिलाकर मयंक जी के गीत अधिक अपने मालूम पड़ते हैं। भाव की रंगमयता के कारण ये छायावाद के बहुत निकट है। अलगाव केवल प्रत्यक्षता के कारण है अर्थात इनके भावों में छायावाद की अपेक्षा अधिक खुलापन एवं प्रत्यक्षता है। वे अपनी पूरी आत्मीयता के साथ अनुभव के नये–नये आयाम खोलते लक्षित होते हैं। सौन्दर्य प्रेम के जाने–अनजाने भाव मूर्त रूप में आते रहते हैं– कभी कुछ सूक्ष्म नूतन छायाओं के साथ, कभी–कभी बहुत सपाट स्फीत एवं आवृत्ति के साथ। इनके ताजे अनुभवों की बिम्बात्मक अभिव्यक्ति इनके काव्य को बहुत उच्च धरातल प्रदान कर देती है।

मयंक जी ने नारी सौन्दर्य एवं श्रृंगार वर्णन में रीतिकालीन एवं छायावादी कवियों से हटकर नवीन विधा अपनायी। मयंक जी रूपासक्ति को रूपोपासना के पुनीत धरातल पर प्रतिष्ठित करके सौंदर्याधन करने लगते हैं। उनमें वायवीयता व ऐन्द्रिकता कतई नहीं है, न ही वासनायुक्त कलुषता। कवि ने नारी सौन्दर्य को रूपायित करने के लिये अनेक प्राकृतिक उपमानों का आश्रय लिया है। मयंक जी ने नारी की कल्पना अपूर्व सौन्दर्य साम्राज्ञी के रूप मे की है। वे अपनी सौन्दर्यात्मक अनुभूति को मधुर रागात्मकता के साथ अभिव्यक्त करने में पूर्ण सफल हुये हैं। उनकी सौन्दर्य दृष्टि मानवीय संवेदनाओं से

सम्बद्ध है जिसे वे पूरी आत्मतल्लीनता से व्यक्त करते हैं। वे पारम्परिक सौन्दर्य बोध को नये मानवीय मानदण्डों पर स्थापित करते चलते हैं। 'चाँद–चकोरी' नामक कविता में चाँद चकोरी से प्यार करने को तैयार है किन्तु उसकी शर्त है कि उसका प्रेमी चाँद रोटी बन जायें–

"उस दिन समझो प्यार किया है,

समझो अमृत तभी पिया है,

जिस दिन आँसू की दो बूंदे,

छलके नयन कटोरी से।

कहे चकोरी सुन ले चन्दा,

मेरी धरती शोर मचाये,

भूखी माटी यही पुकारे,

चाँद अगर रोटी बन जाये।" [23]

मयंक जी के सौन्दर्य गीत माधुर्य एवं वेदना से सिक्त हैं। उनके नारी सौन्दर्य से सम्बन्धित मनोहारी चित्र काव्य जगत के लिये नवीन उपलब्धि हैं, जिनका हिन्दी गीतों में विशिष्ट स्थान है। प्राकृतिक उपमानों से मण्डित बिम्बों में नारी सौन्दर्य से उत्प्रेरित भावों की प्रधानता है। नवीन बिम्बों, रूपों तथा उपमाओं से सजे ये गीत अनायास ही हृदय को आकर्षित कर लेते हैं। नारी सौदर्य को उन्होंने प्रकृति के अतुल सौन्दर्य से अलंकृत किया है। प्रिया के रूप सौन्दर्य का निर्माल्य कवि की आत्मा को उज्जवलता प्रदान करता है। इस प्रकार मयंक जी की सौन्दर्यानुभूति उनकी आत्मा की अवदात्त अभिव्यक्ति बन गयी है। इस सौन्दर्यानुभूति में अनुभूति तीव्रता और रसात्मकता का अनुपम समन्वय है।

सामाजिक एवं जन–जागरण सम्बन्धी गीतों में भाव वैविध्यता

इसमें कोई सन्देह नहीं है कि साहित्य के सरोकार सामाजिक सरोकारों से अभिन्नता रखते हैं और इनमें सीधा अन्तर्सम्बन्ध होता है। हिन्दी साहित्य में सरोकारों का यह सम्बन्ध भक्तिकाल में प्रखर होने के बाद सीधे आधुनिक काल में ही धधकती लौ बन सका है। भक्तिकाल में कबीर एवं रैदास जैसे कवियों ने जन जागरण के अविस्मरणीय प्रयास किये थे।

आधुनिक काल में काव्य के क्षेत्र में जन जागरण की ओर सर्वप्रथम ध्यान भारतेन्दु हरिश्चन्द्र का गया था। उनके 'नीलदेवी', 'भारत दुर्दशा' आदि नाटकों में उल्लिखित कविताओं के अन्तर्गत तत्कालीन जन जीवन की पतितावस्था का ऐसा मार्मिक चित्रण हुआ है कि उसे पढते ही हमें अपनी अधोगति झकझोरने लगती है और क्षोभपूर्ण वेदना हमारे हृदयों को कचोटने लगती है। भारतेन्दु ने तत्कालीन जन जीवन की दयनीय स्थिति का चित्रण करते हुये समस्त भारतवासियों में नव जागरण की जो भावना जाग्रत की तथा अपने प्राचीन वैभव की स्मृति दिलाते हुये जन जीवन में क्रान्ति एवं विद्रोह की चिंगारी सुलगाने का जो प्रयत्न किया, वह हिन्दी साहित्य के आधुनिक काल का पहला संपूर्ण प्रयास था , जिसने जन–जन के हृदय में नव जागरण के भाव उत्पन्न किये थे और हिन्दी कविता के माध्यम से भारत में स्वदेशानुराग को जाग्रत किया था।

भारतेन्दु हरिश्चन्द्र के पश्चात भारतेन्दु मण्डल के प्रताप नारायण मिश्र, बदरी नारायण चौधरी 'प्रेमघन', ठाकुर जगमोहन सिंह, राधाचरण गोस्वामी, अम्बिका दत्त व्यास आदि ने भी जन जागरण के लिए अपने–अपने नाटकों में ऐसी ऐसी अनेक कवितायें लिखीं, जिनमें तत्कालीन भारतवासियों की अधोगति पर आँसू बहाये गये, समाज में व्याप्त कुरीतियों पर वज्र प्रहार किया गया, धार्मिक अनाचार के प्रति क्षोभ प्रकट किया गया, देश के अतीत गौरव का स्मरण दिलाया गया, वर्तमान पतितावस्था के प्रति रोष प्रकट किया

गया तथा स्वदेश प्रेम एवं देशभक्ति की भावना जाग्रत करते हुये अपने भविष्य को सुधारने के लिये प्रेरणा प्रदान की गयी। इन सभी कवियों ने व्यंग्य का सहारा लेकर तत्कालीन जन जीवन में क्रान्ति एवं विद्रोह की आग भड़काने का प्रयत्न तो किया परन्तु इनकी रचनाओ में देशभक्ति के साथ–साथ राजभक्ति भी भरी रहती थी इसीलिये इनकी कवितायें जन मानस पर अधिक प्रभाव नही डाल सकीं।

उपरोक्त कवियों के उपरान्त जन–जागरण की काव्यधारा में श्री अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध' , मैथिली शरण गुप्त एवं रामधारी सिंह 'दिनकर' का नाम प्रमुख है। हरिऔध जी ने **'चोखे–चौपदें'** एवं **'चुभते–चौपदे'** नामक ग्रन्थो का निर्माण करके तत्कालीन जन जीवन को झकझोरने का सुन्दर प्रयास किया है। उन चौपदों में कहीं तो धन के पीछे अपना सर्वस्व गंवाने वाले लोभियों को फटकारा है, कहीं दुश्चरित्र व्यक्तियों को कोसा है, कहीं बे–मेल विवाह करने वाले एवं बुढापे में साज सज्जा करने वालों को डांटा डपटा है, कहीं कायर, निकम्मे, दब्बू, परमुखापेक्षी एवं आलसियों पर व्यंग्य बाणों की बौछार की है और कहीं जातिविनाशक, धर्म विनाशक, देशद्रोही, ढोंगी, चालाक एवं फूट तथा छुआछूत फैलाने वालों को जी भर कर कोसा है। इस तरह हरिऔध जी ने समाज की बुराइयों को जनता के सामने रखकर धर्म में व्याप्त अनाचारों से जनता को अवगत कराकर तथा देश के साथ गद्दारी करने वालों का पर्दाफाश करके जन जागरण का ऐसा मंत्र फूंका कि उनके चौपदों को पढ़ते ही पाठकों के ह्रदय में क्रान्ति एवं विद्रोह की भावना अनायास जाग्रत हो जाती है। मैथिलीशरण गुप्त जी ने 'मुसद्दसे हाली' के ढ़ंग पर **'भारत–भारती'** का निर्माण करके वर्तमान भारतीय जीवन की अतीत जीवन से तुलना करते हुये जन जीवन में देश–प्रेम की भावना भरने का सुन्दर प्रयास किया था। इसी प्रकार 'दिनकर' जी ने हुंकार, रसवंती, द्वन्द्वगीत, सामधेनी, इतिहास के आसूं, सीपी और शंख आदि काव्यों का निर्माण करके अपने युग की आर्थिक, सामाजिक एवं धार्मिक

समस्याओं के प्रति जन जागरण की भावना को सर्वाधिक महत्त्व प्रदान किया है तथा स्वतंत्रता प्राप्ति के उपरान्त देश में व्याप्त राजनीतिक समस्याओं पर अपने विचार प्रकट किये हैं।

हिन्दी साहित्य में बहती आ रही इस उपरोक्त धारा में मयंक जी भी अपने युग का प्रतिनिधित्त्व करते दिखायी देते हैं। मयंक जी जिस युग में सृजनशील थे वह युग एवं साहित्य ऐसे काव्य की आकांक्षा कर रहा था जिसमें जीवन की वास्तविकताओं का यथार्थ चित्रण हो। युग की इस मांग कें अनुरूप ही मयंक जी का काव्य जीवन की कटु सच्चाइयों के उद्घाटन में लीन हो गया। ऐसे प्रयासों का मूल उद्देश्य समाज की जीर्ण एवं ह्रासोन्मुख व्यवस्थाओं मे परिवर्तन लाना था जिससे समाज विकासोन्मुख हो सके। ऐसे काव्य का केन्द्र बिन्दु सामाजिक यथार्थवाद है। यह सामाजिक यथार्थ ही युग सत्य है जिसकी अभिव्यक्ति प्रगतिशील कवि का मुख्य लक्ष्य है। प्रगतिशील कविताओं में कवि नव निर्माण और रचनात्मक प्रेरणाओं की अभिव्यक्ति को आवश्यक मानते है। निरन्तर शोषण के बीच जीवन यापन करने वाले मानव का अप्रिय जीवन कवि का प्रिय काव्य विषय बन गया है और वे अपने सृजन के माध्यम से दुःख दैन्य से त्रस्त्र मानवता को यथार्थ अभिव्यक्ति देने लगे। उन्हें समाज की शक्ति पर पूर्ण विश्वास है। उनका आक्रोश समाज की वर्गवादी व्यवस्था पर है, भले ही इसके आधारभूत कारण कुछ भी हों।

विवेच्य विषय के सन्दर्भ में मयंक जी के दोनों काव्य संग्रह 'रूप रागिनी' (1952 ई0) तथा 'जनता ही अजन्ता है'(1975 ई0) उल्लेखनीय हैं। जब देश आजाद हुआ था उस समय देश के करोड़ों नौजवानों की भांति कवि की आँखों में भी स्वराज्य का सुनहरा स्वप्न बसा हुआ था, स्वराज्य ही समस्त समस्याओं से निजात दिला सकता था, इस भ्रम में ही बहुसंख्यक लोग थे। परन्तु आजादी के कुछ समय बाद भी जब विभिन्न राजनीतिक, सामाजिक एवं आर्थिक समस्याओं ने और विकराल रूप धारण करना शुरू

किया तो विवेच्य कवि ने अपना कविधर्म कुशलता से निभाया और अपनी कविताओं के माध्यम से समस्याओं के प्रति जन जागरण का अथक श्रम प्रारम्भ किया–

"महलों में हो गया सवेरा,

झोपड़ियों में रात शेष है।

माना उर्वर उद्यानों में,

मधु बसंत का वैभव छाया,

कंचन-कीर्ति -कोकिला कूकी

मंथर सुख-समीर लहराया,

किन्तु असंख्यक विजन वनों में,

दुःख का झंझावात शेष है।" [24]

देश की आजादी एवं स्वराज्य ही वह औषधि थी जिसके द्वारा देश की लाइलाज गरीबी को खत्म करने का स्वप्न देखा जाता था परन्तु यथार्थ इससे उलट था। स्वराज्य आकांक्षायें पूरी न कर सका और यह विवेच्य कवि जैसे कोमल ह्रदय वाले कवि हेतु गहरा आघात था जिसे उन्होंने अपने काव्य के माध्यम से अत्यन्त प्रभावी ढंग से उकेरा है :

"इसीलिए बढ़ते जाते है, घर-घर डाके चोरियां,

कोई पेट नहीं भर पाता, कोई भरे तिजोरियां,

कहीं फूल की सेज बिछी है, कंचन गाता लोरियां,

कहीं पड़ी फुटपाथों पर, उलझी सांसों की डोरियां,

इसीलिए बस एतराज है, धूप-छांव वाला स्वराज्य है,

जगमग-जगमग महल हंस रहे, रोती फिरें झुपड़ियां रे।" [25]

तत्कालीन समय में भारत की रीढ़ किसानों के प्रति विवेच्य कवि के मन में बड़ी आस्था थी और उस समय तक शोषित इस वर्ग को आशा के अनुरूप स्वराज्य पारितोषिक

नहीं दे सका तो विवेच्य कवि के हृदय से ये बोल फूट पड़े–

"यह खेतों का देश जिसे अपने खेतों पर नाज है,
आज यहाँ का बच्चा-बच्चा दानों को मोहताज है,
अन्न बिदेसी मन्न बिदेसी कैसा देसी राज है,
पतझर द्वारे हाथ पसारे खड़ा आज ऋतुराज है,
अभी-अभी उतरी थीं किरने, आयी कैसी आंधियाँ,
जिनके कारन राजकमल की सूख गयीं पंखड़ियां रे।" [26]

स्वतन्त्र भारत में आर्थिक विषमता एवं वर्ग विभाजन सदैव विवेच्य कवि को व्यथित करता रहा है। वे इस वैषम्यताके प्रति समाजवादी दृष्टिकोण रखते थे। उन्होंने अपने काव्य में स्थान–स्थान में इस सामाजिक अभिशाप की कातर हृदय से आलोचना की है–

"अभी भूमि पर नहीं संकुचित
हुयी विषमता की सीमायें,
पथ रज को छू सकी न अब तक
रंग महल की दीप शिखायें,
अभी देश में श्रम का शोषण
पूंजी का उत्पात शेष है।" [27]

उन्नीसवीं सदी की भांति बीसवीं सदी भी नये–नये अविष्कारों तथा विकास के प्रतिमानों की सदी कही जाती है परन्तु इस आवरण के पीछे गिरते मानव मूल्यों पर कवि का निर्मम कुठाराघात देखने योग्य है–

"बढ रही है चाँद-सितारों से दोस्ती,
जबकि आदमी को आदमी है अजनबी,
नाचता है झूठ, फूल फल रही घृणा,

प्यार कर रहा सरे बाजार खुदकुशी,

छल-कपट अनन्त अमर बल सा बढ़ा,

आदमी का ऐतबार है छुई मुई।" [28]

मानवीय मूल्यों के प्रति कवि की चिन्ता अकारण नहीं है, तथाकथित विकास के कुण्ड में डूबते उतराते मानव को विकास के एक अन्य पहलू **'सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास'** के प्रति जागरूक बनाने की चेष्टा है। यह उन विकास परिणामों को बचाने का कवि का अमिट प्रयास है जो हजारो वर्षों के शोध का परिणाम है। कवि की यह चिन्ता स्वाभाविक ही है कि ऐसे विकास से क्या लाभ जबकि मनुष्य का आत्मिक क्षरण ही हो जायेगा—

"मानव -विज्ञान-शक्ति ने जल-थल बांधे,

नभ छूने वाले अगणित यान बनाये,

मानव तेरी अद्भुत अणु शक्ति देखकर

कांपी वसुन्धरा, दिग् दिगन्त थर्राये,

पर इससे लाभ कि जग में विद्युत बिखरे

पर अन्तर्तम में अन्धकार छा जाये,

मानव धन, बल, यश लूट रहा है निश्चय

पर आत्मा की सम्पत्ति लुटी जाती है।" [29]

भारत आजाद हुआ फिर भी आजादी नहीं मिली। परतन्त्रता का एक अन्य रूप समाज एवं व्यवस्था में धीरे धीरे गहरी जड़े जमा रहा था। परतन्त्रता का यह रूप ज्यादा आघात देने वाला था क्योंकि यह अपनों की ही दी हुयी परतंत्रता थी। समर्थवान और समर्थ हो रहे थे और आम जन गहरे दल—दल में धसतें जा रहे थे। कवि हृदय से यह अन्याय कैसे आक्रोशित ढंग से व्यक्त हुआ है, यह देखने योग्य है—

अभी देश में न्याय-नीति भी

समर्थ का कर रहे समर्थन य

जनहित की छाती पर होता

अधिकारों का ही अभिनन्दन

अभी दीन, असमर्थ, अकिंचन

पर अन्यायाघात शेष है।" [30]

स्वराज्य आगमन के बाद भारत के अर्थशास्त्र एवं समाजशास्त्र में कोई परिवर्तन न देखकर जिन कवियों ने अपना आहत और क्षुब्ध स्वर बुलन्द किया, उनमें मयंक जी का नाम सर्वोपरि है–

"अब तो कुछ ऐसा लगता है अपने हिन्दुस्तान में।

जैसे कोई दीपक जलता हो आँधी-तूफान में।।

यह कैसी आजादी देखी, सभी तरफ बरबादी देखी

अपनी आँखों में अधनंगी, भिखमंगी शहजादी देखी,

जिसके अधरों पर आंहें हैं, दर्द रचा मुस्कान में।" [31]

कवि का आक्रोश इतने से भी शान्त नही होता, वह तो परमपिता ब्रह्मा की रचनाधर्मिता पर भी प्रश्नचिन्ह लगा देता है–

"मिल जाता भगवान, तो कहते

जीने - मरने से क्या होगा,

बेशुमार इंसानों को ही,

पैदा करने से क्या होगा ?

पहले इंसानियत करो पैदा अपने इंसान में।" [32]

शोषण के विरूद्ध आक्रोशित कवि शोषण की आलोचना जिन नये प्रतीकों द्वारा कर रहा है, वह देखने योग्य है–

"शबनम में भीगी हुयी नहीं,
आंसू में डूबी फुलवारी,
बो रहा भूख का दावानल,
क्यारी - क्यारी में चिंगारी,
अपनी लाली के लिए चूसकर पत्तों को पीला कर दें,
ऐसे फूलों की लाश जलें, लग जाये आग बहारों में।" [33]

जब विश्व में विकसित देश नित विकास के नये–नये प्रतिमान स्थापित कर रहे थे उस समय हमारा देश स्वजनों की मूलभूत आवश्यकताओं– रोटी, कपड़ा और मकान आदि का समाधान नहीं कर पा रहा था। इस यातनादायी विभीषका के प्रति जिम्मेदार कारणों के लिए कवि का तीखा व्यंग्य दृष्टिपात योग्य है–

"लाखों पेटों में आग लगी,
लाखों आंखों में पानी है,
छल-कपट आज कल राजा है,
बेइमानी ही रानी है,
उन्नति यह हुयी चुनाव बढ़े, हड़ताल बढ़ी घिराव बढ़े,
घर-घर में आज अभाव बढ़े, बस भाव बढ़े बाजारों में।" [34]

शोषण के प्रति उपजा कवि का क्रोध तथा कथित जिम्मेदारों के प्रति किस कदर हिंसक हो उठता है–

"गम उसको कम होगा जिसको,
लूटा हो चोर लुटेरों ने,

वह खून तड़पता रहता है

चूसा हो जिसे कुबेरों ने,

जो भर दे धुआं हवाओं में, फूकें बारूद फिजाओ में,

जो घोलें जहर दवाओं में, उनको चुन दो दीवारों में।" [35]

स्वराज्य से भी निराशा ही मिलने पर कवि उस दमित तथा शोषित वर्ग विशेष का ही आह्वान करता है और अपनी नियति को खुद बदलने का आग्रह करता है–

"अब इन्द्रधनुष के रंग भरो,

सूखी मुरझाई कलियों में,

किरनों के फूल खिलाओं अब,

सुनसान अंधेरी गलियों में,

रोती तकदीरो को बदलो, घायल तस्वीरों को बदलों,

अब गलते हुये आंसुओं को बदलो जलते अंगारों में।" [36]

मेहनतकशों के प्रति कवि की आस्था सराहनीय है। अगर यह कहा जाये कि उनकी सृजन प्रक्रिया में स्थान–स्थान पर यह सहानुभूति लिखी दिखायी देती है तो अतिशयोक्ति नहीं होगी–

"अभी कहीं जल कहीं मरुस्थल

कहीं फूल है, कहीं शूल है

वही आम खाते दुनियां में,

जो हरदम बोते बबूल हैं,

कुटियों में आँसू रहते है,

और खून रहता महलों में,

जिसमें रहे पसीना आकर, ऐसा एक मकान बनाओं।" [37]

उन्नीसवीं एवं बीसवीं सदी में समस्त विश्व साम्राज्यवाद के दंश से पीड़ित था। बीसवीं सदी के मध्य तक साम्राज्यवाद का तो अंत हो गया परन्तु उसके अन्य दुष्परिणाम बाद में भी सिर उठाते रहे और उनके प्रति सावधान करने की कवि की चेष्टा देखने योग्य है–

"अरे चितेरे, अभी अधूरी
कितनी ही तस्वीरें हैं।
हथकड़ियां तो टूटी लेकिन,
अभी और जंजीरें हैं।।

रोशन थे जो सारे जग में,
ताजो तख्त सब खत्म हुये,
मगर अंधेरे मे अब भी,
कितनी काली जागीरें हैं।" [38]

मयंक जी के काव्य का अवलोकन यह सिद्ध करता है कि उनमें प्रगतिशीलता के सारे लक्षण मौजूद हैं। उल्लेखनीय है कि प्रगतिशीलता से तात्पर्य प्रगतिवादी होने से नहीं है। दोनों के मध्य अन्तर को स्पष्ट करते हुये श्री रामधारी सिंह दिनकर ने अपनी पुस्तक में कहा है कि "प्रगतिवादी वह है जो मार्क्सवादी जीवन दृष्टि के प्रति प्रतिश्रुत हो और प्रगतिशील वह है, जो ऐसे सभी तत्वों का समर्थक हो, जो रूढ़ि और गतानुगतिकता से बनाकर जीवन को सप्रवाह बनाये"।[39] मयंक जी की चुनी हुयी श्रेष्ठ क्रान्तिकारी कवितायें कवि की वैचारिक क्रान्ति का प्रतिनिधित्त्व करती हैं। उन्होंने समाज की वास्तविकता एवं जीवन संघर्ष को प्रस्तुत करके युगानुरूप अपना उत्तरदायित्त्व निभाया है। उन्होंने भारतीय जीवन की वास्तविक उद्देश्य लेकर ही उनका विरोध या समर्थन किया है। उनका प्रमुख उद्देश्य मानव की प्रगति था। वे मानव प्रगति के लिए ही क्रान्ति चाहते

हैं। देश की परतंत्रता, शोषण एवं दरिद्रता को उन्होंने स्पष्ट और यथार्थ स्वर दिये हैं।

मयंक जी की कविताओं में प्रगतिशीलता का अंश अधिक है। उनके काव्य में मानव प्रेम की भावना प्रबलतम एवं सामाजिक विषमता के प्रति विक्षोभ है। देश की वर्तमान परिस्थितियों से असंतुष्ट मयंक जी आर्थिक एवं सामाजिक स्वतंत्रता को ही सर्वोपरि मानते हैं एवं समस्त मानव जाति की समता को ही सच्ची स्वतंत्रता मानते है। सामाजिक समता और सामाजिक परिवर्तन का संकेत देने वाली कविताओं में उनका मानव प्रेम बखूबी अभिव्यक्त हुआ है।

मानवतावाद आधुनिक कविता की ऐसी विशेषता है जिसका अभ्युदय सर्वथा करुणा की भावना से ही हुआ है। यह भावना गीतियों के विकास के लिए उत्तरदायी तथा पूर्णतया उनके अनुकूल होती है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में जिस प्रकार वीर रस की प्रधानता थी, भक्तिकाल मे ब्रह्म के निर्गुण एवं सगुण स्वरूपों के प्रति अपार निष्ठा व्यक्त की गयी थी, रीतिकाल में श्रृंगार का साम्राज्य था, उसी प्रकार आधुनिक युग का काव्य साहित्य करुणा की पीठिका पर ही आधारित है और इसी के फलस्वरूप इसमें सामान्य मानव की आशा, आकांक्षा तथा सुख–दुःख सभी चित्रित हुये हैं।

प्रत्येक कोमल हृदय की भाँति कवि मयंक जी मानव की साकार मूर्ति के प्रति भीषण आस्थावादी थे। उनकी मानवीय आस्था, ईश्वरीय आस्था से कमतर नहीं थी, बल्कि उससे बढ़कर ही थी। वे मनुष्य को निराकार ईश्वर का साकार रूप मानते थे–

"अगणित तारों के स्वर में कहता जग का भगवान है–

'मैं हूँ निराकार, मेरा साकार रूप इंसान है।" [40]

कवि मयंक मनुष्यता के आराधन को ही सच्ची पूजा मानते है–

"हर आँसू मेरा मन्दिर है, हर दिल मेरी आरती,

मेरी श्रद्धा हारे थके थकाये चरण पखारती,

मुझे मिला चरणामृत मिट्टी में, पानी में, रेत में,

जहाँ कृषक निशिदिन बोते हैं, अपना जीवन खेत में,

जहाँ फटे अंचल में अलसाया यौवन खामोश है,

जहाँ धूल की चादर ओढ़े मांग पड़ी बेहोश है,

जहाँ तड़पती जीवन -ज्वाला बन्दी प्राण -प्रदीप में,

जहाँ छलकते आँसू-मोती दीन दृगों की सीप में,

मेरा गोकुल-वृन्दावन गंगा-यमुना से दूर है,

छलछल बहती व्याकुल आँसू की धारों के पास है।" [41]

मयंक जी ने उस दीन को भी देखा है, जो समर्थ व्यक्तियों के उत्पीड़न को असीम सहनशीलता के साथ सह जाता है। उनकी प्रकृति में ही दीनों के प्रति करुणा का गुण वर्तमान है, इसीलिए उन्होंने **'मेरा मनमोहन सांवरिया'**—जैसी कविता की रचना करके पाठकों के समक्ष एक करुण विवश, कर्मशील दीन का चित्र उपस्थित कर वर्तमान आर्थिक विषमता पर प्रबल प्रहार किया है। उन्होंने मानव को देश, जाति, समाज की लघु सीमाओं में बाँधकर कभी नहीं देखा है और संपूर्ण विश्व की मानवता को एक इकाई के रूप में ही स्वीकार किया है—

"पढ़ो कि हर दिल की जबान में गीता और कुरान है,

सुनो कि हर घायल कराह आवाहन और अंजान है,

हर दिल का हर जख्म कर्बला-काशी-तीर्थ समान है,

आँसू में यदि डूब सको समझो यह गंगा स्नान है।" [42]

मानवता पर कवि की अमिट आस्था प्रशंसनीय है। कवि ने धर्म का सच्चा स्वरूप मानवता में ही निहित माना है। कवि पाषाण पूजा के घोर आलोचक हैं। ईश्वरीय आस्था को व्यक्त करने के समस्त प्रतीकों को वे मनुष्य में ही व्याप्त मानते हैं—

निश्छल रहना ही नमाज है, सच्चाई ही ध्यान है,

जो पूजा स्वीकार उसे है, वह केवल ईमान है,

मानव को ठुकराना ही करना उसका अपमान है,

पत्थर मत पूजो, पूजो वह मिट्टी जिसमें जान है।" [43]

आधुनिक काल में भारतेन्दु युग के कवियों ने किसानों की दुर्दशा से प्रभावित होकर अनेक कविताओं की रचना की और वे शोषणग्रस्त भारतीयों के दुःख दूर करने के लिए शाषकों से प्रार्थना करते रहे। इन कवियों की जन साधारण के साथ गहरी सहानुभूति थी। सामान्य मानवता के प्रति सहानुभूति की यह भावधारा उत्तरोत्तर प्रखर होती गयी तथा द्विवेदी युग छायावादी युग में भी विजय तथा स्वरूप की दृष्टि से इस धारा की कविता में कोई अन्तर नहीं आया। आजादी मिलने के उपरान्त भी सामान्य मानवता के प्रति सहानुभूति का भाव ज्यों का त्यों वर्तमान रहा एवं बदली परिस्थितियों एवं बदली समस्याओं के प्रति कवि अपने कवि धर्म का बखूबी निर्वहन करते रहे। कवि मयंक ऐसे ही कवियों में शामिल थे।

मयंक जी मानवता के अनन्य पुजारी हैं और उन्होंने मानवता को उन्नत एवं विजयिनी बनाने के लिए अपने उत्तम विचार व्यक्त किये हैं। जिनमें स्वदेश प्रेम, राष्ट्रीयता एवं विश्व मैत्री की उदात्त भावनायें देखने को मिलती हैं। मयंक जी उक्त भावों से अत्यधिक अनुप्राणित जान पड़ते हैं। इसी कारण उनका हृदय असीम करुणा से परिपूर्ण है, उनके मानस में दुःख का उदधि उमड़ता रहता है और उनका अंग–प्रत्यंग वेदना की तड़पन से व्यथित रहता है इसी कारण तो वे नैसर्गिक सुषमा से परिपूर्ण कलियों को नहीं, व्यथित मानवों के प्यासे, सूखे अधरों को देखने की आकांक्षा प्रकट करते हैं, प्रकृति की चिर यौवन सुषमा को नहीं, अपितु मानवों के जर्जर जीवन को देखने की इच्छा व्यक्त करते है, कमल पुष्पों पर झलकते ओस कणों को नहीं, अपितु मानवों की मुरझायी पलकों

से झरते हुये आंसू कण देखने की अभिलाषा व्यक्त करते हैं तथा सुगन्धित पवन को नहीं, अपितु दुःख के घूंट पीते हुये अथवा ठंडी सासों को देखने की तीव्र लालसा व्यक्त करते हैं। यही उनका मानवता प्रेम है जो उनके गीतों के माध्यम से व्यक्त हुआ है।

राष्ट्रीय चेतना एवं स्वदेशानुराग

उक्त भाव के संदर्भ में मयंक जी के काव्य की विवेचना से पूर्व ऐतिहासिक दृष्टि से राष्ट्रीय भावना का अवलोकन अनिवार्य है। राष्ट्रीयता या देश प्रेम, प्रेम का वह स्वरूप है, जो आधुनिक काल की गीतियों में प्रचुरता से अभिव्यक्त हुआ है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में वीर क्षत्रियों का वर्णन है, जो विदेशी आक्रमणकारियों का सामना करते हुये अपूर्व शौर्य प्रदर्शित करते थे लेकिन उस समय संपूर्ण देश एक इकाई के रूप में नही बन सका था और क्षत्रिय वीर बहुधा व्यक्तिगत हितों के निमित ही युद्ध में संलग्न होते थे अतः इन रचनाओं में देश प्रेम की भावना नहीं दिखायी देती। उस समय देश प्रेम से कहीं अधिक प्रबल हिन्दुत्व प्रेम था और इसीलिए धर्म की रक्षा में आत्मोसर्ग परम पुण्य का कार्य माना जाता था। रीतिकाल के प्रसिद्ध कवि भूषण ने महाराज छत्रसाल और शिवाजी के पुरुषार्थ का वर्णन किया है; लेकिन उन्हें भी हम केवल हिन्दु धर्मरक्षक के रूप में ही देख पाते हैं। हिन्दुत्व की रक्षा के लिये वे यवनों से लड़ते थे। उन्हें परास्त कर वे हिन्दुओं की चोटी और तिलक की मर्यादा अक्षुण्ण रखते थे। स्वदेश के लिए उसे समग्र रूप में विदेशियों के शासन से मुक्त करने के लिए, उसे पूर्ण स्वतन्त्र बनाने के लिए वे कहीं भी युद्ध करते हुये नहीं दिखायी पड़ते, अतः उन दिनों भी देश प्रेम का अभाव ही परिलक्षित होता है। वास्तव में आधुनिक काल से पूर्व हिन्दी साहित्य में ऐसी कवितायें लिखी ही नहीं गयी थीं जिन्हे राष्ट्रीय कहा जाए। जिनमें देश के सांस्कृतिक, राजनीतिक तथा आर्थिक पक्षों के उत्थान के लिए कवि व्यग्र दिखायी पड़े और जिनके द्वारा मातृभूमि को स्वतन्त्र करने के लिए वह पाठकों को उत्साहित करे। ऐसी कविता का भारतेन्दु युग से पहले

हिन्दी साहित्य में अभाव ही था। हिन्दी के आदिकाल के साहित्य की चर्चा करते हुये ठाकुर शिवप्रसाद सिंह ने लिखा है कि, "अमीर खुसरो ने अपनी रचना 'नुहसिपेहर' में भारतवर्ष का विस्तारपूर्वक गौरवगान किया है और उसकी जलवायु तथा रहन–सहन के आकर्षक ढंगों को अत्यधिक महत्त्व दिया है, लेकिन यह स्वदेशानुराग केवल अमीर खुसरो में ही मिलता है और फिर शताब्दियों तक लुप्त ही रहता है। इसीलिए राष्ट्रीय कविताओं की रचना का श्रेय निःसन्देह भारतेन्दु हरिश्चन्द्र को है।"[44]

भारतेन्दु युग में समाज सुधार, लोकोन्नति तथा मातृभाषा के उद्धार एवं प्रचार से सम्बन्धित अनेक गीत लिखे गये। ये भावनायें इतनी बलवती थीं कि जातीय संगीत में भी इनका समावेश हुआ। इन्हें राष्ट्र–प्रेम का भी अंग मानना चाहिए। भारतेन्दु ने अपने नाटकों में अनेक ऐसे गीतों की रचना की है, जिनमें भारत की तत्कालीन अवनति के लिए क्षोभ व्यक्त किया गया है और उसके सुधारने के लिए भगवान से प्रार्थना की गयी है। ऐसे नाटकों में **'नीलदेवी'** और **'भारत दुर्दशा'** विशेष उललेखनीय है। भारतेन्दु का अनुसरण करते हुये पं0 प्रताप नारायण मिश्र ने भी **'भारत दुर्दशा'** नाटक की रचना की है। तत्कालीन कवियों का यह विश्वास था कि सामाजिक उन्नति के क्षेत्र में अग्रसर होता हुआ भारतवर्ष अपने आप स्वतन्त्र हो जायेगा, इसीलिए समाज सुधार के लिए धर्म के क्षेत्र में पाखण्ड का विरोध, नवीनता के प्रति आकर्षण आलस्य, प्रमाद आदि दुर्गुणों की भर्त्सना दिखायी देती है। सन् 1857 ई० के विद्रोह के असफल होने के कारण तथा अंग्रेजों के आतंक से त्यधिक प्रभावित होने के कारण ये कवि समाज सुधार में ही दत्तचित्त थे, फिर भी कभी–कभी भारत की आर्थिक क्षति एवं टैक्सों के विरोध में ये बोल हीं उठते थे। इन्होंने देश के समृद्ध भूतकाल को गर्व के साथ याद किया और मातृभूमि के प्रति अपार प्रेम प्रदर्शित किया है। इन रचनाओं में प्राचीन काल से चली आती हुयी हिन्दुत्व की भावना का भी अभाव नहीं है और कहीं–कहीं मुसलमानों के विरोध तथा

अंग्रेजों की प्रशस्ति का भी स्वर सुनायी दे जाता है। इस समय राजभक्ति से मिलजुलकर देश भक्ति भी पल्लवित होती हुयी दिखायी देती है और कालांतर मे पुष्ट होकर यह विदेशी शाषकों के प्रति घृणा तथा स्वदेश के प्रति प्रबल प्रेम का बीज वपन करती है। इसी समय स्वदेशी प्रचार के लिए भी कवि प्रयत्नशील हुये। सन् 1885 ई० में इण्डियन नेशनल कांग्रेस की स्थापना हुयी, जिससे देशभक्ति का मार्ग प्रशस्त हो गया। भारतेन्दु युग में इस भावना का उदय स्वाभाविक था, क्योंकि अंग्रेजों से पहले भारतवर्ष पर राज करने वाले मुसलमान शासकों की अवनति के दिनो में बहुत कुछ अराजकता फैल गयी थी, अतः प्रजा का जीवन संकटमय हो उठा था। अंग्रेजों ने भारत में धार्मिक हस्तक्षेप न करने की नीति का अनुसरण किया और सुरक्षा तथा अनेक सुविधाओं को प्रदान किया। अतः भारतेन्दु , अम्बिकादत्त व्यास जैसे अनेक कवियों ने उनकी प्रशंसा करते हुये राजभक्ति प्रदर्शित की; लेकिन साथ ही उनकी शोषण की नीति का विरोध भी किया।

द्विवेदी युग के कवियों ने देश की तत्कालीन दुर्दशा की ओर अधिक ध्यानपूर्वक देखा। श्री मैथिलीशरण गुप्त ने **'भारत–भारती'** के द्वारा स्वदेश के भूत, वर्तमान तथा भविष्य पर विस्तारपूर्वक विचार किया। इन दिनों प्रगाढ़ देश–प्रेम, भक्ति के रूप में परिणत हो गया था और कवि प्राकृतिक छवि से अलंकृत मातृभूमि को आराध्य रूप में मूर्तिमान करने लगे थे। ऐसे कवियों में श्रीधर पाठक, मैथिलीशरण गुप्त, रामचरित उपाध्याय आदि प्रमुख हैं। इन कवियों ने जाति और धर्म से ऊपर राष्ट्रीयता को प्रतिष्ठित किया और भारत की विभिन्न जातियों के व्यक्तियों को एक साथ मिलकर देशोद्धार करने की प्रेरणा दी। ज्यों–ज्यों देश प्रेम प्रबल होता गया, लोगों में निर्भयता बढ़ती गयी। धीरे–धीरे भारतेन्दु युग की निराशा समाप्त हो गयी। उसके स्थान पर जागृति एवं आशा के दर्शन होने लगे। भारत वासियों को अपने प्राचीन गौरव का बोध हुआ क्योंकि अनेक विद्वानों ने प्राचीन भारत के महत्त्व पर इसी समय प्रकाश डाला। लोग विदेशी शासन के प्रति असहिष्णु हो

उठे और गली–गली में राष्ट्रीय गीत सुनायी पड़ने लगे।

पुरातन की ओर मोह दृष्टि से देखना स्वच्छन्दतावादी, कवियो की एक विशेष प्रवृत्ति है। इसीलिए **'प्रसाद'** ने **'शेरसिंह का आत्म समर्पण', 'पेशोला की प्रतिध्वनि'** की रचना की। **'निराला जी'** ने **'छत्रपति शिवाजी का पत्र'** तथा **'यमुना के प्रति'** का प्रणयन किया। झाँसी की रानी के शौर्य से सम्बन्धित एक लोकगीत की सुभद्रा कुमारी चौहान ने बड़ी ही उत्तम साहित्यिक परिणति प्रस्तुत की। **'दिनकर जी'** ने **'हिमालय के प्रति', 'दिल्ली के प्रति'** लिखा। इन रचनाओं से राष्ट्रीयता को अधिक बल मिला। हिन्दी के अनेक कवियों ने राष्ट्रीय आन्दोलन में सक्रिय भाग लिया और कारावास का कठिन दण्ड भी भोगा। पण्डित माखनलाल चतुर्वेदी तथा मैथिलीशरण गुप्त ने गांधी जी के सिद्धान्तों की साहित्य में अवतारणा की। इनके अतिरिक्त श्री सोहनलाल द्विवेदी, श्री सियारामशरण गुप्त, सुभद्रा कुमारी चौहान आदि ने भी राष्ट्रीय गीतों की रचना की। इन गीतों में आक्रमण की भावना के स्थान पर जो आत्मबलिदान की आकांक्षा दिखायी देती है वह गांधीवाद से प्रभावित अहिंसात्मक स्वरूप ही है। श्री श्याम नारायण पाण्डेय ने महाराणा प्रताप के पवित्र चरित्र को लेकर **'हल्दीघाटी'** एवं पद्यन्नी की कथा को लेकर **'जौहर'** की रचना करके हमारे जातीय गौरव को जैसे पुनः सजीव कर दिया। राष्ट्रप्रेम से उन्मत्त 'नवीन जी' तथा 'भगवतीचरण वर्मा' ने क्रान्ति तक का आह्वान किया। निराला जी ने सन् 1918 ई0 और 1921 ई० में ही **'जागों फिर एक बार'** की रचना करक सुप्त भारतीयों को जगाने की चेष्टा की थी। दिनकर जी ने **'हुंकार'** की गीतियों द्वारा लोगों को प्रबुद्ध किया। माखनलाल चतुर्वेदी ने बलि की भावना से पूर्ण राष्ट्रगीतियों का प्रणयन किया। राष्ट्रीयता के मूल में भी विचार करने पर करुणा की भावना ही दिखायी देती है। आधुनिक युग का साहित्य इस भावना से इस प्रकार ओत–प्रोत है कि कुछ हेर–फेर के साथ यही भावना सर्वत्र पायी जाती है। विदेशी शासकों द्वारा पीड़ित दीन कृषक वर्ग, संकटग्रस्त

मध्यवर्ग की दुर्दशा के प्रति सहानुभूति का अभ्युदय होने से ही कवियों में राष्ट्र चेतना जगी, उनमें दुखियों के प्रति करुणा उत्पन्न हुयी और उन्होंने प्रबन्ध काव्यों तथा गीतियों की रचना द्वारा लोगों को स्वतन्त्रता की प्रेरणा प्रदान की।

छायावाद काल के समाप्त होते ही प्रगतिवाद का आगमन हुआ। इन कवियों ने देशप्रेम को छोड़कर विदेश प्रेम को अपनाया। इनके लिए रूस स्वदेश बन गया और इन्होंने उसका यशगान किया परन्तु हिन्दी साहित्य में यह परम्परा शीघ्र ही समाप्त हो गई।

साहित्य के क्षेत्र में मयंक जी जिस युग का प्रतिनिधित्त्व करते हैं वह मुख्यतः स्वतन्त्रता के बाद का समय है। मयंक जी में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना प्रारम्भ से ही सक्रिय रही। उनका समाजदर्शन पूर्ण यथार्थवादी रहा। राष्ट्रीयता उनके लिये मात्र नारा नहीं है बल्कि मानवीय सन्दर्भों में ग्रहण किया गया एक विश्वास है जिसे राष्ट्रीय चेतना का नया स्वरूप प्रगतिशीलता भी कहा जा सकता है। उनके गीतों में राष्ट्रीय नवनिर्माण का आह्वान एवं नवजागरण का सन्देश है। मयंक जी के राष्ट्रीय काव्य में एक नयी भूमिका देने का संकल्प है। महापुरुषों के गौरवगान, स्वतन्त्रता प्राप्ति के लये बलिदान एवं उत्सर्ग की भावना उनके काव्य में प्रबलता से प्रकट हुयी है। राष्ट्रीय स्वतन्त्रता सामाजिक न्याय, समानता एवं व्यक्ति स्वातन्त्रय की भावना का उद्घोष कवि ने क्रान्तिकारी स्वरों में किया है। विदेशी शासकों से मोर्चा लेने का संकल्प एवं देश की स्थिति को अनुकूलता प्रदान करने का आग्रह भी उनकी कविताओं में है।

आजादी के प्रति विवेच्य कवि के मन मस्तिष्क में कोई भ्रम नहीं था। वे आजादी के लक्ष्य को साध्य नहीं अपितु साधन मानते थे। उनके लिये साध्य आजादी नहीं बल्कि एक–एक जन का कल्याण था इसीलिए उन्होंने लिखा भी है–

"अरे चितेरे, अभी अधूरी

कितनी ही तस्वीरें हैं।

हथकड़ियाँ तो टूटीं लेकिन,

अभी और जंजीरें हैं।।" [45]

आजादी के पूर्व कवि मयंक भी उन बहुसंख्यक लेखकों और कवियों में शामिल थे जो ब्रिटिश शासन के प्रति आस्थावान नहीं थे। उन्होंने सर्वथा नये प्रतीकों से अंग्रेज शासकों को अपने काव्यरूपी बाणों का शिकार बनाया है—

"निकलो मेरे घर से निकलो,

बड़े किरायेदार।

चले मोल लेने कागज से

सोने का संसार।।

तुमको इस घर की ममता क्या,

इसकी रक्षा की चिन्ता क्या,

जीर्ण कर दिये स्तम्भ हमारे

जर्जर हर दीवार।" [46]

कवि के हृदय में सामाजिक वैषम्य एवं अभावों की कटुता के रहते हुये भी अपने देश, अपने समाज, अपने राष्ट्र, अपने देशवासी, अपने नदी—वन—पर्वत, अपने खेत—खलिहान, अपने गाँव—नगर तथा अपने सभी प्राणियों एवं सभी पदार्थों से गहरा अनुराग है। वह अपनी मातृभूमि का अनन्य पुजारी है, अपने राष्ट्र का भक्त है और अपनी जनता का अनन्य सेवक है। आजाद भारत के प्रति कवि के हृदय में नवजात शिशु के प्रति पाया जाने वाला निश्छल प्रेम था—

"खिलें हैं नये-नये ये फूल,

न चुभने पायें इनमें शूल,

जागते रहना रे भाई।" [47]

परन्तु यह निश्छल प्रेम चिन्तारहित हो, ऐसा नहीं था। कवि इस नवजात के स्वास्थ्य के प्रति किस कदर चिन्तित था, इसकी एक बानगी प्रस्तुत है–

"खेलना सदा मेल का खेल, हमारी हार-जीत हो एक,

हजारों बाहु, हजारों बाण, लक्ष्य पावन पुनीत हो एक,

भले ही राजनीति हो भिन्न, हमारी प्रीति-रीति हो एक,

प्रान्त के चलते रहें प्रलाप, हमारा राष्ट्रगीत हो एक,

कहीं यह प्रान्तवाद की धूल,

न बोये काँटों भरी बबूल,

जागते रहना रे भाई।" [48]

परन्तु कवि नवजात (आजाद भारत) के प्रति इन भावी संकटों के सामने असहाय नहीं है। उसने इस हेतु की प्राप्ति के लिये यह तय कर रखा है–

"त्रिवेणी सा निर्मल निर्दोष तिरंगा सदा हमारे साथ,

अहिंसा प्रेम हमारा धर्म, शान्ति की खड्ग हमारे हाथ,

बोल देगा जो मीठे बोल, झुकायेंगें हम उसको माथ,

उठाया किन्तु किसी ने शीश, नहीं हम भी असमर्थ अनाथ,

चलेगा जो होकर प्रतिकूल,

बनेगा यही तिरंग त्रिशूल

जागते रहना रे भाई।" [49]

मयंक जी राष्ट्रीय आन्दोलन एवं राष्ट्रीय जागरण के अग्रदूतों के प्रति श्रद्धावनत थे। उन्होंने पंत, निराला आदि कवियों की तरह गाँधी के आदर्शों के प्रति अपनी अपूर्व आस्था प्रकट की। गाँधी जी के नेतृत्व में स्वतंत्रता संग्राम हुआ। उनकी प्रेरणा से भारतीय जनता में एक नवीन जागृति आयी, उनका स्वाभिमान जागा। परतन्त्र भारतीयों ने अपनी गरिमा एवं गौरव को बनाये रखने का संकल्प लिया। पद्दलित समाज में भी चेतना एवं जागृति आयी, जिसके परिणामस्वरूप जनता बापू के आह्वान पर स्वतन्त्रता संग्राम में कूद पड़ी। साम्प्रदायिकता की भावना को समूल नष्ट करने के प्रयास में उन्होंने अपने प्राणों की आहुति तक दे दी। कवि ने सुन्दर भावनाओं के साथ बापू का यशोगान किया है–

"इतिहासों ने लिख ली है यह सदी तुम्हारे नाम।

बापू, तुमको मेरा प्रणाम।।

तुमने हमकों दी आजादी,

लौट गयी गोरी शहजादी,

मखमल-मखमल वस्त्र गेरुये,

तजकर तुमने पहनी खादी,

जहाँ न सूर्य अस्त होता था, तुमने कर दी शाम।

बापू तुमको मेरा प्रणाम।" [50]

महिमागान में चुटीलेपन का सुन्दर समन्वय दर्शनीय है–

"हाय-हाय, बनिये का मोड़ा,

हाथी से टकराया घोड़ा,

मानो भाड़ चने ने फोड़ा,

जैसे धनुष राम ने तोड़ा,

लगा गये तुम चर्चिल के भी सिर में इण्डोबॉम।

बापू, जय-जय सीता राम।

गाँधी ! तुम को मेरा प्रणाम ।" [51]

बिस्मिल, आजाद, भगतसिंह के त्याग और बलिदानों से मिला स्वराज्य जब फिर शोषण एवं भ्रष्टाचार के द्वारा परतन्त्र किया जाने लगा तो कवि का यह आवाहन देखने योग्य है–

"वह बिस्मिल आजाद जिन्होंने,

स्वतंत्रता की इच्छा में,

मरकर अजर अमरता मांगी,

मुक्ति न मांगी भिक्षा में,

लाखों लाल हुये न्योछावर,

इसी स्वराज्य परीक्षा में,

जलिया ं में कितनी कलियाँ

मुरझार्यी इसी प्रतीक्षा में,

उस स्वराज्य की रक्षा में अब,

प्राण लुटाने कौन चलेगा ?" [52]

देश प्रेम की परम्परागत भावना में अतीत स्मरण मुख्य था, तो राष्ट्रप्रेम की नवीन भावना में वर्तमान की कटुता और कठोरता पर दृष्टिपात बहुत है। स्वतन्त्रता के बाद की अवधारणा मे देश–प्रेमी वह भी है जो कृषक और मजदूर के संकट देखता है, दलित और मद–मर्दित के आँसू पोंछता है तथा तिरस्कृत एवं बहिष्कृत को सांत्वना देता है।

उपरोक्त के सन्दर्भ में मयंक जी की राष्ट्रीय चेतना को दो मुख्य आयामों में देखा जा सकता है। एक तो भारतीय जनता को परतन्त्रता का बोध कराकर स्वतन्त्रता प्राप्ति के लिये प्रेरित करना, और दूसरा आजादी के बाद सामाजिक विषमताओं एवं वर्ग शोषण

के विरुद्ध विद्रोह करना। मयंक जी ने राष्ट्रीय चेतना के दोनों पहलुओं पर मर्मस्पर्शी काव्य का सृजन किया है। समय–समय पर देश की स्वतन्त्रता पर मंडराने वाले संकटों के प्रति कवि का राष्ट्रप्रेम उनके गीतों के माध्यम से मुखरित हुआ है। देश की सीमा पर आये संकट के प्रति कवि का आह्वान दर्शनीय है–

"आजादी आवाज लगाये, भारत-माँ आंचल फैलाये,
प्राणों के प्यारे दो, आँखों के तारे दो।
भड़क उठी सीमा पर ज्वाला,
उमड़ा भारत-दल मतवाला,
जलते हैं गिरजे, मस्जिद, शिवाला,
ऐसी आग बुझाने को अब पानी नहीं अंगारे दो।" [53]

इसी प्रकार जब चीन ने भारत पर आक्रमण किया तो कवि गर्जन स्वर में कहता है–

"समर भूमि में आज शत्रु को बढ़कर ललकारों।
कब तक बने रहोगे हलधर अब कृपाण धारो।।
हमने जिसको गले लगाया कहकर अपना भाई,
आज उसी भाई ने है हम पर तलवार उठाई,
हमने अमृत दिया जिसे वह विष लेकर आया है,
मानवता ठुकराकर जिसने दानवता अपनाई,
भारत की आत्मजा अंहिसा भी अनुमति देती है,
हिंसा नहीं अगर ऐसे हिंसक पशु को मारो।" [54]

शत्रु से निर्भय कवि अपने इतिहास गौरव से परिचित है और देशवासियो को उसी गौरव से परिचित करा शत्रु के विरुद्ध अलख जगाने का कवि का प्रयास देखने योग्य है:

जाग हिमालय खौल उठा तेरी गंगा का पानी,

जागे शिवा और राणा, जागे सुभाष सेनानी,

जागे अग्निबाण फिर से, जागे जौहर की ज्वाला,

जगें पद्मिनी सारन्धा, जागे झाँसी की रानी,

उठो बहिन के वीर लाड़ले, सतवन्ती के स्वामी,

उठो भ्रात की भुजा, मात की आँखों के तारों।" [55]

मयंक जी की काव्यचेतना हिन्दी काव्य की विविध प्रवृत्तियों की लहरों के साथ न उठी न गिरी। उसका एक मूल उत्स रहा है। हिन्दी के विविध वादों से अलग उसकी एक स्वतन्त्र सत्ता है। यहाँ तक कि उनकी राष्ट्रीय कवितायें भी अपनी पूर्ववर्ती तथा परवर्ती कवियों की रचनाओं से भिन्न है। मयंक जी ने एक तरफ जहाँ स्वतन्त्रता समर के लिये प्रेरित करने वाले गीत रचे, वही स्वतन्त्रता के उपरान्त रचे गये सामाजिक एवं प्रगतिशील गीत भी उनके उत्कृष्ट राष्ट्रप्रेम के परिचायक हैं, जिसमें मुख्यतः गाँधीवादी दर्शन के एवं समाजवाद के छायाचित्र दिखायी देते हैं। मयंक जी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जैसे सामाजिक एवं प्रगतिशील गीतों की रचना की है उन्हें देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे काव्य से आनन्द प्राप्त करने के लक्ष्य को दोयम दर्जे का स्वीकार करते थे और जनजागरुकता को ही इसका प्रधान लक्ष्य मानने लगे थे।

सन्दर्भ

1. 'स्वर', रूपरागिनी, पृष्ठ–8
2. 'रे प्रणय का', रूप रागिनी, पृष्ठ–46
3. 'धीरे धीरे चलो पवन', रूप रागिनी, पृष्ठ–40
4. 'आज सखी दर्पण देखूंगी', रूप रागिनी, पृष्ठ–36
5. 'तूम फूलों की मुस्कान बनो', रूप रागिनी, पृष्ठ–47
6. 'देव ! मुझे अधिकार न देना', रूप रागिनी, पृष्ठ–45
7. 'आओ आंखमिचौली खेले', रूप रागिनी, पृष्ठ–41
8. वर्मा, महादेवी; दीपशिखा, चिन्ता के कुछ क्षण, पृष्ठ–51
9. 'रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु', रूप रागिनी, पृष्ठ–38
10. 'प्रथम प्रियतम मधुर क्षण', रूप रागिनी, पृष्ठ, 34
11. 'तुम न आये' , अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200
12. रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु, रूपरागिनी, पृष्ठ–39
13. 'तुम न आये', अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200
14. 'रहने दो प्रिये', अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–201
15. 'तेरे आँचल की छाँव में', अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–204
16. 'तुम न आये' , अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200
17. 'वे तारे जो टूट गये हैं !' ,अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–203
18. 'आज की चांदनी' जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–72
19. 'हर आंसू काजल बन जाये', अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–205
20. 'रहने दो प्रिये', अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–201
21. 'तुम न आये', अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200
22. 'तुम न आये, अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–201
23. 'चाँद चकोरी', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–61
24. 'रात शेष है', जनता ही अजन्ता है,– पृष्ठ–42
25. 'टूट न जायें कड़ियां रे', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–12
26. 'टूट न जायें कड़ियां रे', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठः 11–12
27. 'रात शेष है', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–43

28. 'आदमी तरस रहा है प्यार के लिये', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–52
29. 'मिट्टी मिट्टी के लिये', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–64
30. 'रात शेष है', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–43
31. 'अपने हिन्दुस्तान में', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–67
32. 'अपने हिन्दुस्तान में', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–68
33. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–69
34. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता, पृष्ठः 69–70
35. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठः 70–71
36. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–71
37. 'आया है संदेश चाँद से', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–87
38. 'अरे चितेरे– जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–90–91
39. दिनकर, रामधारी सिंह; काव्य की भूमिका, पृष्ठ–46
40. 'मेरा मनमोहन सांवरिया', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–7
41. 'मेरा मनमोहन सांवरिया', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–7
42. 'मेरा मनमोहन साँवरिया', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–8
43. 'मेरा मनमोहन सांवरिया', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–8
44. सिंह, शिवप्रसाद; सूर पूर्व बृजभाषा और उसका साहित्य, पृष्ठ–128
45. 'अरे चितेरे', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–90
46. 'निकलो बड़े किरायेदार', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–92
47. 'जागते रहना रे भाई', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–4
48. 'जागते रहना रे भाई', जनता ही अजन्ता है– पृष्ठ–5
49. 'जागते रहना रे भाई', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–5
50. 'बापू तुमको मेरा प्रणाम', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–1
51. 'बापू, तुम को मेरा प्रणाम', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–3
52. 'कौन चलेगा', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–18
53. 'आंखों के तारे दो', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–21
54. 'शत्रु को बढ़कर ललकारो', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–14
55. 'शत्रु को बढ़कर ललकारों', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–15

अध्याय 4

अध्याय 4
मयंक जी की भाषा शैली

भाषा किसी व्यक्ति के मनोगत भावों की अभिव्यक्ति का प्रबल माध्यम है। बोलचाल की भाषा सरल एवं सहज होती है एवं काव्य भाषा तथा बोलचाल की भाषा में पर्याप्त अन्तर होता है, क्योंकि काव्य का लक्ष्य मानव को संवेदनशील बनाना एवं उसे आनंदानुभूति प्रदान करना है। काव्य का सम्बन्ध व्यक्ति विशेष की रागात्मकता से होता है, अतः काव्य के लिए सीधी सपाट भाषा उपयुक्त नहीं समझी जाती। सीधी सपाट भाषा में वह चमत्कार उत्पन्न नहीं होता जो काव्य के लिए एक आवश्यक तत्व है। काव्यगत भाषा ऐसी होनी चाहिए, जो हृदय तंत्रियों को झंकृत करके भावाभिभूत कर सके क्योंकि काव्य का उद्देश्य ही आनन्द की प्राप्ति है।

काव्य के मुख्यतः दो पक्ष हैं– पहला अनुभूति पक्ष जिसे भाव पक्ष की संज्ञा दी गयी है, दूसरा अभिव्यक्ति पक्ष जिसे कला पक्ष कहते हैं। कलापक्ष कवि की निजी काव्य शक्ति का प्रतिफलन है जिससे उसकी काव्य प्रतिभा का परिचय मिलता है। कविता कवि की सर्जनात्मक कल्पना का परिणाम है। वह अपनी विशिष्ट अभिव्यन्जना शक्ति से उत्कृष्ट काव्य की सृष्टि करता है। मयंक जी का काव्य भाव और कलागत सौन्दर्य से परिपूर्ण है। उन्होंने अपनी आत्माभिव्यक्ति प्रगीतों के माध्यम से की। उनकी कविता की एक अलग ही विशिष्टता है। भावों की तीव्र अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में वे मौलिकता लिये हुये हैं मयंक जी की मूलभूत विशेषता भावना की तीव्रता है जो उनके काव्य को मौलिकता प्रदान करती है। कवि की अनुभूति जितनी गहरी है उनकी भाषा भी उतनी ही प्रभावोत्पादक है। उन्होंने परम्परागत भाषा शब्दों, बिम्बों और प्रतीकों के साथ–साथ नवीन काव्य शैली का भी अनुसरण किया। उनकी भाषा में नवीन व्यंजकता, संगीतात्मकता और चित्रात्मकता का

समावेश हुआ है। मयंक जी की भाषा खड़ी बोली (हिन्दी) है। उनके काव्य में भिन्न भिन्न भाषाओं के विविध–विविध शब्द प्रयुक्त हुये हैं जिससे उनके गीतों में स्वाभाविकता, गतिशीलता एवं सजीवता आ गयी है। उन्होंने अपनी संवेदनाओं की संप्रेषणीयता के लिए सभी प्रचलित भाषाओं के शब्दों को निःसंकोच अपनाया है साथ ही कविता में उन्होंने लोकभाषा की भी उपेक्षा नहीं की। यही कारण है कि भाषा उनके काव्य को सरसता, सरलता एवं मधुरता प्रदान करती है तथा काव्य सौन्दर्य में वृद्धि करते हुये स्वाभाविक गति प्रदान करती है। उनके गीत रसोद्रेक करने में पूर्णतः सक्षम हैं। कवि ने अपने काव्य को संवारने का प्रयास कभी नहीं किया, न ही उसे कलात्मक रूप देने के लिए किसी विशिष्ट शैली का ही उपयोग किया। उनके गीतों में भावों का एक सहज विस्तार देखा जा सकता है। उन्होंने अपने भावों को उसी प्रकार अभिव्यक्ति दी जैसे वे उनके मन में उठे।

मयंक जी ने विषयानुसार ही भाषा का प्रयोग किया है। नारी अथवा प्रकृति सौन्दर्य के चित्रण में जहाँ सुकोमल सरस भाषा का प्रयोग किया है वहीं सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना से सम्बन्धित काव्य में आवेगों से युक्त ओजस्वी भाषा प्रयुक्त हुयी है। उनके काव्य में छायावादी ऋजुता एवं प्रगतिवादी कोमलकांत पदावली का भी उपयोग हुआ है–

"मेरे नयनों के द्वार खोल

उर में कोई अति मौन गया,

जब दृग में डोरे लाल मिले,

मैंने पहचाना कौन गया,

छू गया कदाचित दृग तल पर,

रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु।" [1]

कवि की भाषा उनके भावों के अनुकूल है। छन्द प्रवाह भी स्वाभाविक है। अलंकारों

का प्रयोग आवश्यकतानुसार एवं बहुत स्वाभाविक रूप से हुआ है, सप्रयास नहीं–

"निशि सी काली अलकें समेट

ओढ़ा अरुणोदय सा अंचल,

मध्यस्थ धवल सरिता तट पर,

निकला हँसता रवि बाल-विमल।" [2]

उनकी भाषा भावों के साथ ही जुड़ी है जिससे काव्य स्वाभाविक सौन्दर्य से विभूषित है। वे भावों के सृष्टा हैं भावनाओं के वेग में कल्पनाजगत में विचार कर अपनी अतृप्त वासना के साथ अंतर्द्वन्द्व करते हैं और द्वन्द्व में आलंकारिकता के लिये कोई स्थान नहीं है। मयंक जी का अधिकांश काव्य गीतिकाव्य है। अपनी काव्य रचना के अन्तर्गत उन्होंने विविध छन्दों का प्रयोग किया है। प्रगीतात्मकता के प्रति उनका तीव्र आग्रह है। उनके गीत लयबद्ध हैं जिनमें रागात्मकता एवं माधुर्य है। कवि ने रागात्मकता एवं लयात्मकता को विशेष महत्व दिया है उनका सदैव यही प्रयत्न रहा कि काव्य में संगीतात्मकता एवं स्वर प्रवाह बना रहे। इसके लिये उन्होंने आवश्यकतानुसार नवीन शब्द, प्रतीक एवं बिम्बों का प्रयोग खुलकर किया।

काव्य का प्रथम आकर्षण उसकी भाषा है एवं काव्य भाषा का मुख्य गुण लय है। शब्द चयन एवं भाषा की लयात्मकता की महत्ता को प्रतिपादित करते हुये **पंत जी** ने **पल्लव** की भूमिका में लिखा है–'भाषा का और मुख्यतः काव्यभाषा का प्राण राग है–राग का अर्थ आकर्षण है। यह वह शक्ति है जिसके विद्युत स्पर्श से खिंचकर हम शब्दों की आत्मा तक पहुंचते हैं, हमारा हृदय उनके हृदय में पहुंचकर एक भाव हो जाता है– जिस प्रकार शब्द एक ओर आकरण के कठिन नियमों से बद्ध होते हैं, उसी तरह राग के आकाश में पक्षी की तरह स्वतन्त्र भी है।'

छायावादी कवियों का प्रभाव मयंक जी के काव्य में स्पष्टतया देखा जा सकता है। मयंक जी ने छायावादी भाषा सौन्दर्य को निःसंकोच ग्रहण किया है। उन्होंने छायावादी भाषा की उत्कृष्टता को कुछ सीमा तक सुरक्षित रखते हुये उसे जनसाधारण के स्तर तक लाने का प्रयास भी किया है, क्योंकि छायावादी कवियों की भाषा दार्शनिक, दुरूह एवं अत्यधिक प्रतीकात्मक होने के कारण जनसामान्य से दूर होती जा रही थी। यह काव्यभाषा सर्वसाधारण को प्रभावित करने में असमर्थ थी। वह केवल उच्च, मध्यमवर्ग एवं सहृदय बुद्धिजीवियों की कलाप्रियता को ही तुष्ट कर पाने में समर्थ थी। इसीलिए मयंक जी ने जहाँ एक ओर संस्कार रूप में छायावादी भाषा को ग्रहण किया, वहीं दूसरी ओर परम्परागत स्थिति से उबरने का भी प्रयास किया है। छायावादी कवियों में अपनी प्रेमानुभूतियों को उच्चतर भूमि प्रदान करने के लिए दार्शनिक रूप देने की चेष्टा है, वहीं मयंक जी अपनी प्रेम व्यन्जना को सामान्य स्तर पर करते हैं जिससे उनके काव्य में एक सहज आकर्षण और सौन्दर्य आ गया है। उनके काव्य में खड़ी बोली का शुद्ध, परिष्कृत एवं प्रौढ़रूप देखा जा सकता है–

"जिस दिन ज्वाला से तुमने मेरा अभिषेक किया था,
हृदय जलाकर प्रभा लुटाने का वरदान दिया था,
और कहा था ज्वालामुखी जले पर आह न करना,
किरन तार से मैने निज अधरों को तभी सिया था,
उस दिन से ही काजल की इन काली रेखाओं से,
मूक वेदना अंकित करने का मुझको अभ्यास है।" [3]

और

"आज राखी दर्पण देखूंगी

जहां उनके दर्शनों की

तृषित तृष्णा नाचती है

जहां पीड़ा से विकल हो

करूण करूणा नाचती है

प्रियतम की छवि झूल रही है

जिनमें वे लोचन देखूंगी।" [4]

उपर्युक्त गीत विरह गीत है। इस गीत में कवि ने प्रिया की विभिन्न मनःस्थितियों की स्वाभाविक व्यंजना की है। इस गीत की पंक्तियों में भाषा की गतिशीलता भी देखी जा सकती है। तृष्णा और करूणा के नाचने जैसी नवीन उक्तियों द्वारा कवि ने वेदना और कसक की मार्मिक अभिव्यक्ति बड़ी सफलता से की है। भावानुभूति तीव्रता सहज एवं नितांत लौकिक स्तर पर व्यक्त होकर भी प्रवाहित किये बिना नहीं रहती।

मयंक जी की भाषा शैली प्रांजल एवं प्रवाहमयी है। उनके गीतात्मक काव्यों में यथेष्ट तारल्य और अन्विति की ऊष्मा है। उनकी शब्दानुभूति में सच्चाई है और अभिव्यक्ति में स्पष्टता के साथ–साथ सहज संकेतात्मकता का आकर्षक योग है। उनकी भाषा में संस्कृत का पाण्डित्य नहीं है और न उर्दू का आधिक्य है। भाषा का सहज, ग्राह्य रूप ही उनके काव्य में उपलब्ध होता है। भिन्न–भिन्न भाषाओं से निःसंकोच शब्द ग्रहण उनकी उदार और गुणग्राही वृत्ति का परिचय देता है। शब्द चयन की स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा, सरस, सजीव, भावाभिव्यक्ति में समर्थ और सम्पन्न है। हिन्दी, उर्दू, फारसी, संस्कृत, अंग्रेजी सभी भाषाओं के प्रयोग से उनकी भाषा की रचना हुयी है। भावानुसार वे जहाँ जैसा चाहते हैं प्रयोग कर लेते हैं। मयंक जी की भाषा विभिन्न भावों एवं स्तरों को लेकर चलती है। राष्ट्रीय एवं सांस्कृतिक रचनाओं में भाव ओजपूर्ण

तथा श्रृंगारिक रचनाओं में मधुर एवं कोमलकांत पदावलियों का प्रयोग है। भाषा की दृष्टि से हम मयंक जी के काव्य को शब्द–चयन, शब्द–संयोजना एवं शब्द–शक्ति इन तीन खण्डों में विभक्त करके देखेगें–

शब्द–चयन

काव्यभाषा का सौन्दर्य और प्रभाव शब्द चयन और उसके सफल प्रयोग पर आधारित है। अतः कवि का शब्द भंडार जितना विस्तृत होगा एवं उसे उपयोग करने की उसमें जितनी अधिक क्षमता होगी, उसका काव्य भी उतना ही मधुर, सरस, हृदयग्राही और प्रभावपूर्ण होगा। मयंक जी का भाषा पर विशेष अधिकार रहा है। वे अनेक भाषाओं जैसे–हिन्दी, संस्कृत, उर्दू, आंग्ल भाषा के ज्ञाता थे। वे भाषा के मर्मज्ञ हैं। इसीलिए उनका काव्यशिल्प अनूठा है। भाषा की सहजवक्रता और उसकी प्रभावशाली व्यन्जना उनके भाषाओं के प्रचिलित शब्द उनके काव्य में प्रयुक्त हुये हैं। शब्द चयन एवं उनकी व्यन्जना में कवि का यही प्रयास रहा कि उनके गीतों में अनुप्रास युक्त संगीतात्मकता एवं स्वर प्रवाह का निर्वाह होता रहे। उन्होंने अपने गीतों में स्वर, भाव, छन्द, ध्वनि, शब्द और लय को अपनाकर नवीनता के रंग भरे। कवि ने काव्य परम्परा से हटकर नवीन गढ़े शब्द, नवीन विशेषण, क्रिया, प्रतीकों और उपमानों को अपनाया। कवि का यह प्रयोग उनकी संवेदनाओं को संप्रेषणीय बनाने में सहायक रहा है। नवीन कल्पनायें और बिम्ब बिना प्रयास के ही उनके काव्य में आ गये हैं, जो काव्य में सौन्दर्य वृद्धि के साथ साथ कवि की काव्य क्षमता का भी उद्‌घाटित करते हैं।

मयंक जी के काव्य में संस्कृतनिष्ठ शब्दों का प्रयोग बहुलता से हुआ है। अपनी भावनाओं की तीव्र अभिव्यक्ति के लिए जहाँ उन्होंने उर्दू शब्दों का प्रयोग किया है–

"पढ़ो कि हर दिल की जबान में गीता और कुरान है,

सुनों कि हर घायल कराह आवाहन और अजान है,

हर दिल का हर जख्म कर्बला-काशी-तीर्थ समान है,

आँसू में यदि डूब सको समझो यह गंगा स्नान है।"[5]

और

"घाव मिटाना है दुनियां की इस घायल तस्वीर से,

अब कांटों की राह हटाना है दिल की जागीर से,

नया राग है, नई कहानी, नई आग है, नई जवानी,

बदलेंगें तकदीर पुरानी, आज नयी तदबीर से।"[6]

वहीं अंग्रेजी भाषा के शब्दों को बड़ी उदारता से अपनाया है –

"कहीं बिक रही है हंसी की लिपिस्टिक,

उसे लूटने को ही झगड़े मचे है।"[7]

भाषा की वैविध्यता का एक अनूठा प्रयोग मयंक जी ने अपने काव्य में किया है। महात्मा गाँधी को समर्पित यह गीत अंग्रेजी, उर्दू, हिन्दी एवं संस्कृत भाषा से सृजित अलग – अलग पदों से मिलकर लिख गया है जो कि भाषाओं के सन्दर्भ में उनकी सहजता का परिचायक भी है–

"वेनेरेबल फादर आफ नेशन,

बोज़ टू दि एवरी जेनरेशन,

फुट प्रिंट्स लेफ्ट ऑन सैण्ड आफ टाइम,

लीड टू फेस एवरी सिचुएशन,

ओ प्राफेट आफ ट्रुथ दाउ शावर्ड, लव एण्ड पीस एण्ड कॉम।

बापू तुमको मेरा प्रणाम।।

वह था ऐसा एक फरिश्ता,

था जिसका हर रूह से रिश्ता,

आगे आने वाली सदियाँ,

याद करेंगी वक्ते गुज़िश्ता,

रोज़े कयामत तक गूंजेगा गाँधी का पैगाम।

बापू तुमको मेरा सलाम।।

शान्ताकारं काराशयनम्,

पर दुःख कातर नीरव नयनम्

यस्योरसि उज्जवल यश रत्नम्,

सुन्दर, सुन्दरतर, सुन्दरतम,

जन रंजन, गौरांग निकन्दन, लीला ललित ललाम।

बापू तुमको प्रणाम।।

हाय हाय, बनिये का मोड़ा,

हाथी से टकराया घोड़ा,

मानो भाड़ चने ने फोड़ा,

जैसे धनुष राम ने तोड़ा,

लगा गये तुम चर्चिल के भी सिर में इण्डोबॉम।

बापू, जय जय सीताराम।।

गाँधी ! तुमको मेरा प्रणाम।" [8]

भाषा के संदर्भ में ऐसी सहजता कम ही देखने को मिलती है जैसी कि कवि मयंक

में दिखायी देती है। मयंक जी ने काव्य में मधुरता एवं कोमलता के लिये देशज भाषा के शब्दों को भी ग्रहण किया है, किन्तु ये शब्द बहुत ही कम मात्रा में प्रयुक्त हुये हैं। उनके काव्य में हिन्दी, अंग्रजी, उर्दू, फारसी एवं उनके स्वयं के गढ़े नवीन शब्द बड़ी सहजता से प्रस्तुत हुये हैं। शब्द प्रयोग में कवि ने अत्यन्त जागरुकता का परिचय दिया है। मयंक जी ने भाषा में लोच, मधुरता, कमनीयता, बोधगम्यता एवं प्रवाह के लिये विभिन्न शब्दों को निःसंकोच अपनाया है। ये शब्द बिल्कुल सटीक और सहजता से प्रयुक्त हुये हैं। देशज शब्दों से जहां काव्य में बोधगम्यता आ गयी है वहीं संस्कृत निष्ठ तत्सम शब्दों के प्रयोग से उनकी विलक्षण काव्य प्रतिभा भी उद्‌घाटित हुयी है–

"सत्य हारा नहीं आज तक शक्ति से,
शक्ति के दर्प, पशुबल, अहंकार से,
क्रोध-प्रतिरोध जीता नही आज तक,
नेह से नीति से प्रीति से प्यार से।" [9]

और

"तेरी उर्वर वसुन्धरा पर
बरस चुके कितने शोणित घन
किन्तु कोटि बलिदान मनुज के,
अविरल रणचंडी का नर्तन,
शत् कुरुक्षेत्र कर्बला तेरी,
रक्त पिपासा बुझा न पाये।" [10]

मयंक जी का काव्य अनेक भाषाओं के शब्द मिश्रण से अधिक प्रभावशाली हो गया है। उनकी शब्दावली हृदय को आकर्षित तथा अभिभूत करती है। शब्द और भावों में

सामन्जस्य बना हुआ है। वे कहीं भी खटकते नहीं हैं। उन्होंने अपनी सहज और मार्मिक अनुभूतियों को सरस, प्रांजल और प्रौढ़ भाषा में व्यक्त किया है। उनकी भाषा अजस्र धारा के समान बही है। भाषा की दृष्टि से हम मयंक जी के काव्य को दो भागों में विभक्त करके देखेगें। पहली उनकी प्रारम्भिक भाषा है जो अनुभूति प्रधान तथा भावों की स्पष्टता के कारण सहज एवं सरल है। यह मुख्यतया माधुर्य गुण प्रधान तथा श्रृंगार रस से पूरित है एवं दूसरी है– परवर्ती भाषा जो उत्कृष्ट, ओजस्वी एवं ओजगुण तथा वीररस प्रधान है।

(1) प्रारम्भिक भाषा

इस अनुच्छेद के अन्तर्गत मयंक जी के प्रथम काव्य संग्रह 'रूप रागिनी' (1952 ई0) को लिया जा सकता है। रूपरागिनी की अधिकार कवितायें श्रृंगार रस एवं माधुर्य गुण के प्रभाव में है। मयंक जी की प्रारम्भिक काव्य भाषा मुहावरों, अलंकारों आदि के वाह्याडंबरों से प्रायः मुक्त है। छन्द प्रवाह भी स्वाभाविक है। सहज और सरल भाषा में उनके भाव स्वतन्त्र रूप से प्रवाहित हुये हैं। उनकी प्रारम्भिक रचनाओं में सामान्य भाषा का आकर्षण उनकी भाव व्यन्जना है। 'रूपरागिनी' की भाषा अत्यन्त सहज एवं सरल है। उसका शब्द शिल्प मन को आकर्षित करता है। 'रूपरागिनी' में संस्कृत गर्भित खड़ी बोली का प्रयोग हुआ है। उर्दू, फारसी आदि शब्दों का आश्रय लेकर उन्होंने काव्य को गति प्रदान की है, देशज शब्दों से भी उन्होंने परहेज नहीं किया। अरमान, कुटिया, नसेनी, सिसकी, दीवानें, शहीद, इशारा, तेवर, प्यास, गम, मंजिल, पिय, हिय, आंसू, आह, कसक आदि शब्द बड़ी स्वाभाविकता से प्रयुक्त हुये हैं। मयंक जी ने अपने व्यक्तित्व के अनुरूप ही काव्य भाषा ग्रहण की है। उर्दू, फारसी शब्दों के प्रयोग से काव्य में प्रवाहमयता, कोमलता एवं लोच के गुण समाविष्ट हो गये हैं। संस्कृत के तत्सम और तद्भव शब्दों का प्रयोग भी बड़ी स्वाभाविकता से हुआ है। 'रूपरागिनी' की भाषा में चारूता एवं माधुर्य है।

मयंक जी के प्रथम काव्य संग्रह 'रूपरागिनी' में छायावादी काव्य भाषा एवं शैली का प्रभाव स्पष्टतया मिलता है।

अपनी कला साधना में मयंक जी आद्यन्त सजग रहे हैं। उनके गीतों की भाषा सर्वत्र गीतों के सरस और स्निग्ध कलेवर के अनुकूल कोमल एवं माधुर्य गुण से संयुक्त है। अपने काव्य विकास के प्रथम चरण में वे पन्त जी की सुकोमल, मधुर, सौन्दर्यमयी पदावली से प्रभावित रहे हैं। 'अंग–अंग रंग दो उमंग में', 'अपनी सस्मित धूप–छाँह से', संध्या के तम में डूबा रवि', 'लाख बार पतझड़ ने लूटा, पर बसंत आना न भूलता', 'कोटि नयन एक नीर', 'हुआ दिवस का अंत क्षितिज में','अगणित अधरों पर आशा के नव हेमन्त शिशिर मुस्काये', 'नयन में मधुमास अधरों में मधुर मधु प्यास लेकर','आज चकित चकोर था शशि से भरा निज अंक पाया' आदि इनकी परिष्कृत, प्रांजल और कोमलकांत पदावलियों में पल्लवयुगीन पंत जी का प्रभाव स्पष्ट परिलक्षित है।

'रूपरागिनी' का अध्ययन यह सिद्ध करता है कि मयंक जी का शब्द चयन उच्चकोटि का है। विशाल और विस्तृत भावनाओं के छोटे–छोटे शब्द–खण्डों में बाँध देना मयंक जी की भाषा की प्रधान विशेषता है। व्याकरण की दृष्टि से उनकी भाषा शुद्ध एवं परिमार्जित है। शद्धता उनकी भाषा की प्रमुख विशेषता है।

(2) परवर्ती भाषा

परवर्ती काव्यभाषा का रूप हम उनके परवर्ती काव्य संग्रह **'जनता ही अजन्ता है'** में देखते हैं जिसकी भाषा अत्यन्त प्रौढ़ एवं गरिमायुक्त है तथा पूर्णतः परिष्कृत होकर प्रस्तुत हुई है। 'जनता ही अजन्ता है' के ज्यादातर गीत राष्ट्रीय भावना एवं सामाजिक यथार्थवाद से प्रेरित है अतः मनोभावों को दृष्टि से काव्य रचना के समस्त आधार पूर्व की अपेक्षाकृत परिवर्तित हो गये हैं। 'जनता ही अजन्ता है' की भाषा की सबसे बड़ी विशेषता

है 'अभिव्यक्ति की स्वच्छता'। इस अभीष्ट की प्राप्ति उन्होंने सर्वत्र ऋजु, सहज, सार्थक और भावानुकूल शब्दो के प्रयोगों द्वारा की है। मयंक जी को शब्दों की अन्तरात्मा का ज्ञान था और उनमें अपने भावों को शब्दों में भर देने की सामर्थ्य थी। उनके शब्द ससन्दर्भ, भावगर्भित, अर्थगर्भित, और चित्रमय तथा उनका शब्दकोश समृद्ध, व्यापक और अक्षय था। विभिन्न पर्यायों के प्रयोगों की कुशलता और उपयुक्तता उन्हें कुशल भाषा शिल्पी सिद्ध करती है। गीतसृजन के इस दूसरे चरण में मंयक जी में छायावादी प्रभाव लगभग नगण्य रूप में दिखायी देते हैं। इस सृजन खण्ड में तद्भव, उर्दू, फारसी शब्दों का प्रभाव उनके गीतों में अपेक्षाकृत और ज्यादा दिखायी देती है। शब्द चयन में पहले की अपेक्षा और ज्यादा स्वाभाविकता दिखायी देती है। विभिन्न भाषाओं के शब्दों को प्रयोग उन्होने एक साथ बड़ी कुशलता से किया है और इससे उनके गीतों में कहीं भी अस्वाभाविकता या असहजता नहीं दिखायी देती है। शब्द चयन की स्वच्छन्द प्रवृत्ति के कारण उनकी भाषा सरस, सजीव, भावाभिव्यक्ति में समर्थ और सम्पन्न बनी है।

मयंक जी ने काव्य में प्रवाह बने रहने एवं बोझिलता न आने के लिये प्रसंगानुकुल अनेक नवीन शब्दों को गढ़कर प्रस्तुत किया है, जिससे काव्य सौष्ठव में वृद्धि हुयी है। ये नवीन गढ़े हुये शब्द अनायास ही हमारा ध्यान आकर्षित कर लेते हैं, साथ ही कवि की शब्द शक्ति की सक्षमता का परिचय भी देते हैं। उदाहरणार्थ– तिरंगत्रिशूल, रतन उजाला, घन कजरारे, नयन रतनारे, संझवाती, बरजोरी, शोणित घन, अन्ध अमावस , घायल कराह, सघन धूम्र–मण्डप आदि शब्द पाठकों को मुग्ध करते हैं।

इस प्रकार मयंक जी की भाषा पूर्णतः उनके भावों की सफल वाहिका बनी है। उनके शब्द चयन में विविधता है जिन्हें कवि ने भावों के अनुसार ही व्यवहृत किया है। शब्दों को सजाना अथवा जान बूझकर अलंकृत करना उनका ध्येय कभी नहीं रहा,

किन्तु उनके काव्य में समस्त कलागत विशेषतायें विद्यमान हैं। उनके शब्द किसी विशेष भाषा के लिये भी नहीं रूके। भाषा में सहज ग्राह्यता और प्रवाह है। इन्हीं विशिष्टताओं के कारण मयंक जी को संवेदनशील शब्द शिल्पी कहा जा सकता है।

शब्द संयोजना

कविता में जब मानवीय एवं सामाजिक यथार्थों का समावेश होने लगा तो उस परिणति के अनुरूप नये बिम्ब, नये–नये प्रतीक एवं नयी भाषा भी सर्जित हुयी। मयंक जी मानव भावनाओं के कुशल चितेरे हैं। उन्होंने काव्य में जिस भाव जगत का निर्माण किया उसी के अनुरूप काव्यशिल्प को भी चुना। भाषा के प्रति कवि का दृष्टिकोण व्याकरणनिष्ठ न होकर स्वच्छन्द रहा। इनकी भाषा जनजीवन के निकट रही। भाषा सम्बन्धी छायावादी प्रभाव उनके प्रारम्भिक काव्य में भली भांति दृष्टिगोचर होते हैं, उनकी परवर्ती भाषा में यह प्रभाव लगभग नगण्य रूप से लक्षित होते हैं। खड़ी बोली को उन्होंने ब्रज एवं अवधी भाषा की भाँति माधुर्य और सरसता प्रदान की साथ ही ओजगुण को भी नये आयाम दिये। उनकी प्रतीक योजना में संगोपन नही है, न ही अत्यधिक सूक्ष्मानुभूतियों का अंकन। भाषा चित्रात्मकतापूर्ण है। विरोधाभास, रूपकातिशयोक्ति एवं मानवीकरण जैसे नवीन अलंकारों को अपनाकर कवि ने अपने काव्य को सौन्दर्य प्रदान किया। काव्य में भावानुरूपता के लिये छन्दों को भी शास्त्रीय बन्धनों से मुक्त रखा।

भावों की अभिव्यक्ति और उनका प्रसार भाषा पर निर्भर है, क्योंकि भाषा ही भावों की समर्थ वाहिका है। मयंक जी ने भावों की स्वाभाविक अभिव्यक्ति और उनके प्रसार के लिए भिन्न–भिन्न भाषा के व्यवृहत शब्दों का प्रयोग किया। उन्होंने अपने काव्य में भाव और भाषा में पूर्ण सामन्जस्य बनाये रखने की सफल चेष्टा की है, क्योंकि भाषा की गरिमा बनाये रखने के लिये शब्द सौन्दर्य और उसका प्रभावशाली प्रयोग आवश्यक है। मयंक जी

की काव्य भाषा और भावों का सामन्जस्य बना हुआ है। शब्दों के यथावत प्रयोग में उनका कोई सानी नहीं है। भाषा पर उनका व्यापक अधिकार रहा। इनकी सीधी सादी भाषा में भी हृदय को को द्रवित करने की क्षमता है। सीधी–सादी भाषा उनके भावों की समर्थ वाहिका बनी है। मयंक जी की भाषा पर उर्दू भाषा का व्यापक प्रभाव रहा जिसके कारण उनकी भावाभिव्यक्ति में लाक्षणिकता भी आ गयी है। कवि ने संस्कृत तद्भव शब्दों के साथ उर्दू शब्दों की सुन्दर नियोजना की है–

"आंगन का हर दीपक प्यासा, थर-थर काँप रही हर बाती,
अन्धकार से आँख मिलाने में दीपक की लौ शरमाती,
प्राणों में जन्मी चिंगारी, तीरों से घायल हर छाती,
रक्त रंगा हर एक लिफाफा आँसू से भीगी हर पाती।" [11]

कवि ने भावों में माधुर्य के लिये छायावादी कोमलकांत पदावली को अपनाया, जिसमें ब्रजभाषा जैसा ही माधुर्य और सरसता है –

"कर में ले स्वर्ण थाल
आई उषा मृदुल गात
वर विहंग कूक रहे
धवल धरा स्निग्ध स्नात
कमल नयन चूम रही
प्रात किरण कामिनी।" [12]

और

"निबिड़ शून्य श्यामा रजनी में
किसने तारक दीप सजाये

प्राणों के उन्मन गुंजन में

किसने मादक स्वर छलकाये

यह किसकी मधुमय वंशी ध्वनि मेरे नीरव गान छू गयी।" [13]

संस्कृत के तत्सम शब्दों के प्रयोग से काव्य में सौष्ठव की वृद्धि हुयी है एवं भाषा में बोझिलता भी नहीं आने पायी है–

"क्षीण घूघंट था प्रकम्पित या तरंगित था सरोवर

ओट में जल मग्न था उज्जवल विमल मुख कमल सुन्दर

फिर रहे थे खोजते मधु चपल चंचल नयन मधुकर

था सुमधुर पराग रन्जित देह का प्रत्येक कण कण" [14]

और

"जागता दृग क्षितिज पर

उन्माद अरूण विकास कैसे

चूम लेती अधर अंबर

को उषा उल्लास कैसे

सरस अधर पाटल पर होता

हेम हास नर्तन देखूंगी।" [15]

विशेषण विपर्यय कवि की भावाभिव्यक्ति का प्रधान साधन बना है। नवीन विशेषणों का प्रयोग कवि की अप्रतिम सूझ का परिचय देता है और इस दृष्टि से मयंक जी की कृति 'रूपरागिनी' उन्हें शब्द शिल्पी ठहराती है। 'रूपरागिनी' से कुछ उदाहरण दृष्टव्य है–

(1) तृषित तृष्णा (2) करुण करुणा

(3) वेगवती लहरें (4) तन्द्रिल पलकें

(5) अन्ध अमावस

प्रतीक विधान में भी कवि ने अपनी निराली सूझ का परिचय दिया है। उन्होंने संज्ञायें ही नहीं विशेषण और क्रियायें भी प्रतीक के रूप में व्यवृहत की हैं। ऐसे प्रयोगों में अर्थ सांकेतिकता के साथ काव्य में रमणीयता भी आयी है–

(1) तिरंग त्रिशूल
(2) घन कजरारे
(3) है प्यार ही वृन्दावन
(4) आंसू में डूबी फुलवारी
(5) नव हेमन्त शिशिर मुस्काये

मयंक जी की शैली में गांभीर्य और सामासिकता है। भाषा को उन्होंने भावों के अनुरुप ही ढाल लिया है। शब्द योजना भावानुकूल, मर्मस्पर्शी एवं मुग्धकारी है। उनकी भाषा भी भावों के साथ नवीन रूप धारण कर लेती है जिससे काव्य में प्रवाह, गेयात्मकता एवं भाव व्यन्जना आ गयी है–

"रंगीन बहारों का मौसम,
हंसती कलियां रोती शबनम,
सोने के आंगन शहनाई,
माटी के घरौंदों में मातम,
उनके भी गूंगे गीत सूनो,
कुछ उनका भी संगीत सुनो,
नयनों की व्याकुल वंशी में,
बहते हुये आंसू का सरगम।" [16]

मयंक जी की भाषा में वेग और भावनाओं में हलचल है। इनकी सहज भाषा भी हृदय को उद्वेलित करने में सक्षम है। उनकी भाषा कहीं सीधी सादी है तो कहीं

संस्कृतनिष्ठ क्लिष्ट। शब्द रचना और विशेषण प्रयोग में कवि का कोई सानी नहीं है। कवि का कला के प्रति विशेष आग्रह नहीं है, किन्तु उनके काव्य में कला पक्ष अपने पूर्ण वैभव के साथ अवतरित हुआ है। कवि ने रंग, रूप, वातावरणी भावचित्रों को अनूठे शिल्प सौन्दर्य से सज्जित किया। उनकी बिम्ब योजना ने भावों को निखार एवं नूतन रूप प्रदान किया। नवीन अलंकार, प्रतीक एवं छन्द विधान उनके काव्य कौशाल के चारूत्व में वृद्धि करते हुये, कवि की श्रेष्ठ कलात्मकता का परिचय देते हैं। उन्होंने भाषा विषय, छन्द और अभिव्यन्जना में नवीन प्रयोग किये। वे सदैव ही काव्य में नवीनता का संधान करते रहे। कवि में भाव बिम्बों को साकारता प्रदान करने की अद्भुत क्षमता है। उन्होंने अपनी विलक्षण काव्य प्रतिभा से शब्द एवं बिम्बगत योजना में नये–नये रंग भरे। वे मात्र शब्द शिल्पी ही नहीं अभिनव शब्दों के प्रयोक्ता भी हैं।

कला की दृष्टि से नये अनूठे उपमान, कुछ सरस रम्य कल्पनायें उनकी अपनी निजी सूझ का प्रतिफलन है, जो उनके काव्य शिल्प विशिष्ट और अनूठा है। कवि स्वानुभूतियों को बिम्ब प्रतीक एवं सार्थक शब्दों के द्वारा अभिव्यक्त करने में पूर्णतः सफल हुये हैं अपनी प्रखर प्रतिभा के बल पर उन्होने सुगठिंत चित्र प्रस्तुत किये, जो उनकी प्रौढ़ता और परिपक्वता का परिचय देते हैं। उनकी रचनायें शिल्प सौष्ठव, भाव संयोजन एवं रूप गठन की दृष्टि से प्रौढ़ एवं अभूतपूर्व हैं।

मयंक जी की रचनाविधा गरिमामय है। अभिव्यंजनात्मक दृष्टि से भी वह विशिष्ट है। उनके काव्य में खड़ी बोली का परिष्कृत और प्रौढ़ रूप विद्यमान है। उनकी काव्यशैली एवं भाषा छायावादोत्तर काल में एक प्रतिमान बन गयी है। शिल्प की दृष्टि से उनका काव्य बेजोड़ है। कवि ने अपनी सहज, मार्मिक, कोमल अनुभूतियों को सरस, प्रांजल और प्रौढ़ भाषा में अभिव्यक्ति दी।

मयंक जी की कविता में भाषा की सज्जा समृद्धि के लिये बिम्बों और अलंकारों की समुचित योजना के साथ उत्कृष्ट भाषा की नियोजना हुयी है। प्रतीकों का प्रयोग भी आकर्षक रूप में हुआ है जिससे भाषा में चित्रात्मकता का समावेश हो गया है। मयंक जी का काव्य शिल्प की दृष्टि से विशिष्ट है और आधुनिक काव्य में अपना विशिष्ट स्थान रखता है।

शब्द शक्ति

मयंक जी के काव्य में अभिधा, लक्षणा एवं व्यन्जना तीनों शब्द शक्तियां विद्यमान हैं। काव्य सृजन के आरम्भ में छायावादी प्रभाव के फलस्वरूप लक्षणा शक्ति का अधिक प्रयोग मिलता है परन्तु 'जनता ही अजन्ता है' में अभिधा शक्ति का अधिक प्रयोग हुआ है। अभिधा का अतिरेक छायावादी काव्य की लाक्षणिक प्रवृत्ति के विद्रोहस्वरूप ही था, क्योंकि छायावादी काव्य में लाक्षणिकता के अतिरेक ने ही छायावादोत्तर कवियों को अभिधा शक्ति के प्रयोग के लिये प्रेरित किया किन्तु मयंक जी ने लक्षणा और व्यन्जना शब्द शक्तियों का प्रयोग भी बड़ी कलात्मकता से किया है–

"रजनी बीती उषा आयी
आलोक बढ़ा शशि तेज घटा
पर इस उषा अरुणोदय से
बढ़ती अगणित मुखचन्द्र छटा
कैसा अद्भुत है यह दिनकर
रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु।" [17]

उपरोक्त पंक्तियों में सहज कथन के द्वारा कवि ने प्रिया सौन्दर्य का मोहक वर्णन किया है। यहाँ एक और उदाहरण दृष्टव्य है जिसमें कवि की विवशता, निराशा एवं

अनुभूति का नया बोध व्यन्जना शक्ति द्वारा प्रकट हुआ है–

"दुख दीपक के स्वर छेड़ रहा है डर में

करूणा रो रोकर मेघराग गाती है

भैरव अलापती है भविष्य की चिन्ता

वेदना विकल होकर विहाग गाती है

मैं इतने राग बजाने को केवल दो

श्वासों के दुर्बल तार लिये फिरता हूँ।"[18]

इस प्रकार हम देखते हैं कि मयंक जी के प्रारम्भिक सृजन में छायावादी प्रभावों की बहुलता है। अतः रूपरागिनी की कविताओं में लक्षणा के उदाहरण बहुलता से मिलते हैं जबकि परवर्ती काव्य ग्रन्थ 'जनता ही अजन्ता है' अभिधा के नये–नये प्रयोगों से युक्त है।

सन्दर्भ

1. रुपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु, रूपरागिनी, पृष्ठ–39

2. रुपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु, रूपरागिनी–38

3. 'मिट्टी का है देह दीप', अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–206

4. 'आज राखी दर्पण देखूंगी', रूप रागिनी, पृष्ठ–36

5. 'मेरा मनमोहन साँवरिया', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–8

6. 'अब भी दिल्ली दूर है', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–10

7. 'फुलवारियों से तो पूछो', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–35

8. 'बापू तुमको मेरा प्रणाम', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठः 2–3

9. 'प्रीति का गीत', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–25

10. 'मानव तेरे नग्न नृत्य से', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–65

11. स्नेह का दान दो, जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–44

12. 'अलस नयन खोल सजति'–रूपरागिनी, पृष्ठ–21

13. 'प्रीत किसी की प्राण छू गयी', रूपरागिनी, पृष्ठ–35

14. 'प्रथम प्रियतम मधुर क्षण'–रूपरागिनी– पृष्ठ–34

15. 'आज सखी दर्पण देखूंगी', रूपरागिनी, पृष्ठ–36

16. 'गीत की कोयल क्या गाये', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–49

17. 'रूपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु', रूपरागिनी, पृष्ठ–38

18. 'मै इस जीवन का भार लिये फिरता हैँ, रूपरागिनी, पृष्ठ–50

अध्याय 5

अध्याय 5
काव्य-शिल्प

1- मयंक जी के काव्य में बिम्ब-विधान

मयंक जी के काव्य में बिम्ब विधान पर चर्चा से पूर्व काव्य के इस जटिल पहलू पर संक्षिप्त चर्चा आवश्यक है।

बिम्ब शब्द का प्रयोग प्रायः छाया, प्रतिछाया तथा अनुकृति आदि के लिये किया जाता है। आधुनिक काल में इस शब्द का प्रयोग व्यापक तथा विशिष्ट अर्थो में होने लगा है। हिन्दी में यह शब्द अंग्रेजी के 'इमेज' के पर्याय के रूप में प्रयुक्त होता है और उसी अर्थ में ग्रहण किया जाता है क्योंकि अपने वर्तमान स्वरूप तथा अर्थ में यह शब्द यूरोपीय साहित्य के समानान्तर ही हिन्दी में व्यवहृत होने लगा है।

बिम्ब शब्द के अन्य व्युत्पत्तिपरक तथा कोषगत अर्थ हैं– किसी पदार्थ का मनश्चित्र या मानसी प्रतिकृति, कल्पना अथवा स्मृति में उपस्थित चित्र अथवा प्रतिकृति जिसका चाक्षुष होना अनिवार्य नहीं है, किसी व्यक्ति या पदार्थ की प्रतिकृति, मूर्त और दृष्ट प्रत्यंकन एक पदार्थ के लिये किसी मूर्त अथवा अमूर्त पदार्थ का प्रयोग जो उसके अत्यधिक समान हो अथवा उसे व्यंजित करता हो, जैसे मृत्यु के लिये निद्रा का प्रयोग आदि।

'मोनियर विलियम्स' के संस्कृत– इंगलिश कोश के अनुसार भारतीय संदर्भो में इस शब्द का रूपान्तर सूर्य चन्द्र मण्डल, प्रतिच्छवि, प्रतिच्छाया, प्रतिबिम्बित अथवा प्रत्यांकित रूप, चित्र आदि के अर्थ में माना गया है।'[1] इन सब अर्थो से बिम्ब के विषय में जो विशेषतायें गिनायी जा सकती हैं, उनमें प्रायः समान रूप से स्वीकृत विशेषतायें हैं :

(1) बिम्ब किसी विशिष्ट भाव अथवा विचार का स्थानापन्न है,

(2) यह स्थानापन्नता कुछ विशिष्ट समानताओं के कारण है,

(3) मूल तथा स्थानापन्न की इन समानाताओं अथवा समान धार्मिताओं का आधार मानव मन में रूप तथा आकार ग्रहण करता है,

(4) रूप तथा आकार ग्रहण करने के कारण उसका सम्बन्ध मानव की विभिन्न इन्द्रियों से है क्योंकि इन्द्रिय बोध के कारण ही वह निर्मित और प्रेषित होता है।

इस प्रकार अर्थ सम्बन्धी विशेषताओं की दृष्टि से हिन्दी और अंग्रेजी आदि भाषाओं में बिम्ब शब्द का प्रयोग समान अर्थों में होता है। काव्य में भी इस शब्द का प्रयोग अपने मूल रूप तथा अर्थ को सुरक्षित रखता है।

काव्य मानव मन से उठने वाले विभिन्न भावों अथवा मनोविकारों का निश्छल प्रकाशन है। देशकाल परम्परायें तथा संस्कार एवं कवि की अपनी निजी प्रकृति एवं विशिष्ट अभिरूचियों से उसके भाव जगत का निर्माण होता है। इस विशिष्ट भावभूमि के आधार पर ही वह अपने काव्य ग्रन्थों की स्थापना में रत होता है। फलस्वरूप इसकी ये नितान्त आत्मपरक विशेषतायें उसके काव्य में सर्वत्र दृष्टिगोचर होती हैं क्योंकि इन विशेषताओं का समुच्चय ही उसका अपना कवि–व्यक्तित्त्व हुआ करता है। इसके बाद वह किसी भी वस्तु, पदार्थ अथवा भाव का वर्णन क्यों न करे, उसके इस व्यक्तित्व की छाया उसके प्रत्येक वर्णन में झलकती रहती है। यह छाया ही उसकी वास्तविक शैली है और यही उसके काव्य का यह प्राणतत्व है जो उसे अपने अन्य समान धर्मायों से पृथक महत्व प्रदान करने का कारण होता है।

किसी भी व्यक्ति के बोध के स्वरूप को समझने के लिये उसके परिवेश को समग्रता में जानना आवश्यक होता है, क्योंकि मानव की सभी जैविक प्रक्रियायें उसके समूचे व्यक्तित्व से चलित और रूपायित हुआ करती है; मयंक जी के जीवन के संज्ञान द्वारा उनके व्यक्तित्व में निहित कुछ बिन्दुओं को निर्धारित करने का प्रयास किया गया है जो काव्य सृजन में उनके बिम्बबोध तथा प्रतीक संयोजन का आधार बने–

(1) कविता, नाट्यकला एवं संगीत के प्रति बालपन से गंभीर लगाव,

(2) आस–पास के सामाजिक परिवेश के प्रति प्रारम्भ से ही अत्यंत आत्मीयता तथा प्रगाढ़ सहानुभूति,

(3) अपने से बड़ी आयु वाले तथा प्रौढ़ व्यक्तियों का संपर्क प्रारम्भ से ही प्रिय, फलतः अकाल बुद्धि वार्धक्य।

(4) कुशाग्रबुद्धि तथा आख्या एवं उपाख्या प्रतिभा।

(5) असाधारण एवं अपरिवर्तनशील व्यक्तित्व।

(6) निरन्तर उदात्तीकरण की ओर उन्मुख।

(7) अंतर्मुखी व्यक्तित्व की सभी विशेषतायें, जैसे–रहस्यप्रियता, एकान्तप्रियता, स्वाभिमान, दुर्ज्ञेयता, आवरणप्रियता, सहज एवं प्रयत्नज अहं भावना, दानशीलता, सवो व संरक्षण भावना आदि।

(8) बातचीत की कला तथा सभा चातुरी।

(9) कलात्मक बोध तथा वैसा ही परिवेश।

(10) सौम्य तथा सात्विक रंगों तथा कला निर्देशनों के प्रति आसाक्ति।

(11) आत्मप्रसार तथा उदारता की भावना एवं सेवा भावना का उज्जवल रूप।

(12) अंतर्मुखी तथा बहिर्मुखी व्यक्तित्व में सतही दृष्टि से देखने पर कोई तारतम्य नहीं दिखायी देता, किन्तु मूलतः दोनों एक दूसरे के पूरक। इन दोनों का निर्वाह महादेवी जी ने बड़े संतुलित विवेक से किया है।

(13) बाहरी स्तर पर समाजसेवक, राष्ट्रीयता के समर्थक तथा इन दोनों से सम्बन्धित गतिविधियों में सक्रिय।

(14) आन्तरिक स्तर पर अधिदैविक तथा आध्यात्मिक भावभूमियों का साक्षात्कार। उनकी कविता इस साक्षात्कार का प्रमाण है।

(15) समग्रता में प्रत्येक स्तर पर विकारों को संस्कारों में परिणत करने के निरन्तर प्रयास में रत् जीवन तथा व्यक्तित्व।

(16) सुख दुःख तथा भाव–अनुभूति तथा चिन्तन–मनन आदि की दृष्टि से सामन्जस्य प्रिय।

(17) अपने पर किये दोषारोपणों के प्रति उदासीन। यह उदासीनता उनके कवि व्यक्तित्व में विशेष रूप से दृष्टव्य है।

मयंक जी का स्वयं का कवि व्यक्तित्व उनके बिम्बबोध से इतना घुलमिल गया है कि इस संश्लिष्टता के कारण उनकी काव्यकला का स्तर अत्यन्त सूक्ष्म हो गया है, उतना ही सूक्ष्म और रहस्यसंकुल जितना कि मयंक जी का अपना व्यक्तित्व है। आत्मपरकता के भावबिम्बों को उनकी सहज काव्य सुलभ कल्पना एवं सौन्दर्य चेतना ने भी समृद्ध बनाने में योग दिया है। उनकी कविता में सही अर्थो में कल्पना तथा सौन्दर्य आदि के रम्य स्तर उनके बिम्बबोध के शोभाकारक धर्म बन गये हैं।

उल्लेखनीय है कि किसी भी व्यक्ति की विचारधारा अथवा जीवन दृष्टि के मूल्यांकन अथवा विश्लेषण में उसके प्रतिफलित व्यक्तित्व को ही आधार मानकर चलना उचित होता है, क्योंकि उसकी जीवनदृष्टि उसके जीवन के अनुभवों का ही परिणाम हुआ करती है। मयंक जी के संदर्भ में कहा जाये तो यह उचित ही होगा कि उनका काव्यगत बिम्ब एवं प्रतीक–संयोजन उनकी निरन्तर परिष्कृत जीवन दृष्टि अथवा दार्शनिक विंचारधारा की ही सहज परिणति है। मयंक जी का जीवन दर्शन आरोपित न होकर सहज है। इस सहजभाव का कारण यह है कि उनकी जीवन दृष्टियों को उनकी वैयक्तिक अनुभूतियों की अनिवार्य भावभूमियाँ प्राप्त हैं। कहीं–कहीं तो ऐसा लगता है कि उनके कथ्य एवं उनके जीवन में एक ऐसा अद्भुत साम्य और सन्तुलन है जो विरले साधकों को ही प्राप्त होता है। साधना की यह सिद्धावस्था उन्हें जीवन भर की साधना से

प्राप्त हुयी है। उनकी चेतना निरन्तर उर्ध्वमुखी रही है। उसमें केवल आरोहं की दिशायें हैं, अवरोहण का उसमें कोई स्थान नहीं है। मयंक जी के अनुसार कविता में केवल अभिजात् , विराट अथवा महत् को ही स्थान नहीं मिलना चाहिये बल्कि जीवन एवं प्रकृति की छोटी से छोटी घटना भी कविता का विषय बन सकती है।

मयंक जी का समूचा काव्य बिम्ब प्रतीकमय है। उनकी काव्य चेतना का कोई ऐसा सूत्र नहीं जो उनकी आरंभिक एवं प्रौढ़त्म कविताओं में समान रूप से प्राप्त न होता हो। 'रूपरागिनी' एवं 'जनता की अजन्ता है' की बिम्वावलियों एवं प्रतीक समूहों को एक स्थान पर एकत्र कर उनका स्वरूप विश्लेषण किया जाये तो उन सब को एक इकाई अथवा समुच्चय के रूप में देखा जा सकता है। मयंक जी के दोनों ग्रन्थों के रचनाकाल में अन्तर होते हुये भी उनकी कविता की संपूर्णता के अभोग अथवा आस्वाद के स्तरों में कोई उल्लेखनीय अंतर नहीं दिखायी देता। उनकी इस काव्यगत उपलब्धि का प्रमुख कारण यह है कि उनका पथ प्रारम्भ से ही परिचित रहा है, उनकी दृष्टियों में न तो किसी प्रकार की अस्पष्टता है और न ही किसी तरह का दिशा भ्रम दिखायी देता है। साक्ष्य की एकरूपता और लक्ष्य की तन्मयता ने भी उदात्तता की इस भूमि में प्रतिष्ठित होने में उनकी यथोचित सहायता की है। साध्य एवं कला की इस एकरूपता का यह अर्थ नहीं है कि उनकी काव्यचेतना जड़ता की स्थिति को प्राप्त कर गयी है अथवा उसके विकास में किसी प्रकार का गत्यवरोध है। अनुभूति और अभिव्यक्ति की इस सिंद्धावस्था का मूलकारण यह है कि मयंक जी की काव्य चेतना का विकास सतही नहीं है। उसमें किसी प्रकार की बाहरी घटनाओं का प्रभाव अथवा आरोपण नहीं दिखायी देता है। उनकी समूची काव्य–चेतना को यदि एक बिन्दु कहा जाय तो वह भाव बिन्दु ऐसा है जिसमें महासागरीय चेतना का प्रसार है।

मयंक जी अनुभूति एवं संवेदना के कवि है। उनका बिम्ब विधान सहज, सशक्त

एवं सटीक है। भावबिम्बों की दृष्टि उनके काव्य में प्रचुर मात्रा में देखी जा सकती है। छायावादोत्तर काल के कवियों में मयंक जी बिम्बों की सृष्टि में अग्रगन्य हैं। उनके द्वारा प्रयुक्त बिम्ब दृष्टि के अतिरिक्त हमारे रागबोधों का स्पर्श करके रसोद्रेक करने की क्षमता रखते हैं। मयंक जी की बिम्ब निर्माण कला पर छायावादी शैली का प्रभाव उनके प्रारम्भिक काव्य में देखा जा सकता है। उन्होंने अभी प्रतिभानुसार नवीन बिम्बों का निर्माण किया जो नितान्त मौलिक है। मानव सुलभ तृष्णा की तीव्रता से युक्त नवीन बिम्ब उनकी स्वच्छन्द मनोवृत्ति के सूचक हैं। कवि की भाषा में कुछ ऐसी लोच और चित्रात्मकता है कि कहीं–कहीं उपमा और विशेषणों में भी बिम्बों का आरोपण हो गया है। नारी के रूप सौन्दर्य एवं प्रकृति के मानवीकरण के दृश्यों में मयंक जी की बिम्ब योजना विशिष्ट कलात्मकता से प्रस्तुत हुयी है। निम्न पंक्तियों में बिम्ब का एक सुन्दर उदाहरण दृष्टव्य है–

"मैं दूर भी नहीं हूँ मैं पास नहीं हूँ
आकाश हूँ किसी की निःश्वास नहीं हूँ
हूँ शशि न जिसे घेरे
नभ का मधु मेला
तारे न साथ जिसके
हूँ सूर्य अकेला
मैं एक विजन वन हूँ उपवन न किसी का।" [2]

मयंक जी ने कल्पना के स्थान पर अनुभूति को विशेष महत्व दिया है। उनके बिम्बों का आकर्षण उनकी लालसाओं , कुंठाओं एवं तृष्णा का सफल रूपांकन है। मयंक जी के काव्य में मुख्यतः शब्द बिम्ब, सहानुभूतिक बिम्ब, व्यंजना प्रवण बिम्ब, वस्तु बिम्ब एवं प्रसूत बिम्बों का चित्रण हुआ है। गंध, ध्वनि, रंग इत्यादि से सम्बन्धित बिम्बों की सृष्टि भी उनके

काव्य में प्रचुरता से हुयी है। संवेद्य बिम्बों के अन्तर्गत ध्वनि, स्पर्श आदि बिम्बों का प्रयोग बड़ी कलात्मकता से हुआ है। मयंक जी के काव्य में भाव बिम्बों की प्रचुरता है–

"थकी उमर की गहरी नदियां,
जर्जर तन की नाव पुरानी,
बैठे-बैठे उब गये हैं,
मन के राजा, ममता रानी।" [3]

उपर्युक्त बिम्ब अति सूक्ष्म है। 'थकी उमर की गहरी नदियां, जर्जर तन की नाव पुरानी' एक संवदेनात्मक चित्र उपस्थित करता है। मयंक जी के भाव बिम्ब भावगर्भित एवं सहज हैं। भाव बिम्बों में कवि ने नवीनता का अनूठा संधान किया है। मयंक जी की भाव सूक्ष्मता एवं वाग्मिता अत्यन्त कलात्मक ढंग से व्यक्त हुयी है, उन्होंने कम से कम शब्दों में अधिक से अधिक व्यंजना का प्रयास किया है।

मयंक जी ने समानुभूतिक बिम्बों का प्रयोग भी अत्याधिक किया है। समानुभूति की स्थिति में दृष्टा एवं दृश्य एकमेव हो जाते हैं। इस बिम्ब की विशेषता संवेदनशीलता एवं इन्द्रियग्राह्यता है। अमूर्त पर मूर्त का आरोपण करके वृत्तियों का प्रकाशन भी इस बिम्ब की विशिष्टता है। ऐन्द्रिक संवेदनाओं की प्रेषणीयता के लिये कवि ने समानुभूतिक बिम्बों का प्रयोग बड़ी कुशलता से किया है–

"रात आई महावर रचे साँझ की,
भर रहा मांग सिन्दूर सूरज लिये,
दिन हँसा, चूडियाँ लेती अंगड़ाइयाँ,
छू के आँचल बुझे आंगनों के दिये।" [4]

महावर रचना, माँग भरना, अंगड़ाई लेना आदि क्रियाओं का आरोपण अचेतन वस्तुओं पर किया गया है। कवि ने अपनी मनः स्थिति को उद्घाटित करने के लिये ही

इन क्रियाओं का मानवेत्तर वस्तुओं पर आरोपण करके एक विशिष्ट वातावरण की सृष्टि की है।

भाव बिम्ब की अपेक्षा ध्वनि बिम्ब अधिक कलात्मक होते हैं किन्तु मयंक जी के ध्वनि एवं भाव दोनों ही बिम्ब बड़ी कलात्मकता से सृजित हुये हैं–

"बजाते श्यामल मेघ मृदंग, बजाता जलतरंग पानी,
मधुर रिमझिम के नूपर बाँध, नाचती है वर्षा रानी,
छेड़ते झींगुर सारंगी कोकिला का स्वर पंचम तान।" [5]

मंयक जी के काव्य का अनुशीलन यह प्रमाणित करता है कि उनके काव्य में भावबिम्बों की प्रधानता है।

वर्ण अथवा रंग परिज्ञान बिम्ब विधान की दृष्टि से काव्य कला के लिये विशेष महत्व रखता है क्योंकि रंगबोध की सूक्षमता बिम्बों में कलात्मक सौष्ठव का परिचय देती है। मयंक जी में रंगों के प्रति तीव्र आसक्ति झलकती है–

"बढ़ा सर-सरिताओं में नीर, रंगा धरती ने धानी चीर।" [6]

और

"लाल-पीली-नीली-चम्पई छींट का आंचल लहराया।
धरा ने गाया दीपक राग, गगन ने मेघराग गाया।" [7]

प्रकृति के उपादानों को संवेदना से युक्त करके कवि ने अनेक उदात्त बिम्बों की सृष्टि की है। इन बिम्बों को उन्होंने एक नई कलात्मकता प्रदान की है–

"निशि सी काली झलकें समेट, ओढ़ा अरूणोदय-सा अंचल,
मध्यस्थ धवल सरिता-तट पर निकला हंसता रवि बाल विमल।" [8]

और

"धूप की पालकी पर किरन की दुल्हन

आ के उतरी, खिला हर सुमन हर चमन,

देखो बजती हैं भौरों की शहनाइयां,

हर गली दौड़कर न्योत आया पवन।" [9]

संकेतग्राही चाक्षुक बिम्ब के द्वारा कवि ने वातावरण की रूपाकृति और झंकृति का पूर्ण समन्वय करने में अपनी कलात्मकता एवं कौशल का परिचय दिया है–

"उषा बताने दौड़ी आती जब तुम मन्द-मन्द मुस्कातीं

निज सुन्दर सुविशाल भाल पर लाल बाल-रवि-बिन्दु लगातीं

शशि छिटकाता रूप ज्योत्सना जब तुम कर में मुकुर उठातीं

कर देती संकेत अमा जब तुम उलझी अलकें सुलझातीं ।" [10]

मयंक जी के बिम्बों में संक्षिप्तता, संवेदनशीलता एवं स्वच्छन्द कल्पनाशीलता है। समस्त कलात्मक गुणों से युक्त बिम्ब कवि की प्रतिभा के द्योतक हैं। उनके बिम्बों में गहन अर्थकता और भाव–गांभीर्य है। उनका बिम्बात्मक सौंदर्य चित्ताकर्षक है। मयंक जी ने बिम्बों का चयन जीवन और जगत के व्यापक क्षेत्र से किया। उनके बिम्ब विधान में विचार बिम्बों का सौन्दर्य भी दर्शनीय है जिसमें दार्शनिकता का पुट भी है–

"है प्यार ही वृंदावन, आंसू ही तो गंगा है।

है आदमी ही मंदिर, जनता ही अजन्ता है।।

बिजली की रोशनी में, बुझते दिये भी देखो,

ग़ज़लें भी पढ़ो लेकिन, कुछ मर्सियें भी देखो।" [11]

कवि ने बुद्धिवदिता के साथ वस्तुगत संवेदना के प्रत्यक्षीकरण एवं संप्रेषणीयता को भी ग्रहण किया है। उनके बिम्बविधान की अन्य विशिष्टता सद्यता और सघनता भी है। उनका बिम्बविधान समस्त कलात्मक गुणों से परिपूर्ण है। बिम्बगत विशेषताओं के अन्तर्गत

चित्रात्मकता, ऐन्द्रीयता, तथा साम्यसौंदर्य को स्वीकार किया गया है। मयंक जी की बिम्ब योजना में इन समस्त विशेषताओं को देखा जा सकता है। उनके बिम्ब काव्यानुभूतियों को मूर्तता प्रदान तो करते ही हैं, साथ ही हृदय की गहराइयों का संस्पर्श करने में भी वे सक्षम हैं।

मयंक जी के काव्य बिम्बों का उपरोक्त वर्णन उनके काव्यगत बिम्बबोध के स्वरूप को पूर्णतः स्पष्ट कर देता है। ये बिम्ब इतने सप्राण एवं सचेतन हैं कि स्वयं में आधी से अधिक कविता बन जाते हैं। मयंक जी की कलाप्रियता, चित्रोपमता तथा वायवी चेतना के दिव्य संस्पर्श इन काव्य बिम्बावलियों में अपनी पूरी मनोहारिता के साथ झिलमिला रहे हैं। इसके अतिरिक्त उनकी काव्य–चेतना के मूल प्रवाह बिन्दु भी इन बिम्बों में सम्यक् तथा सहज भाव से विजड़ित हैं।

2- प्रतीक

कवि की भावानुभूतियाँ अत्यन्त सूक्ष्म होती हैं। ये अनुभूतियाँ साधारण मानवीय दृष्टि से परे एवं इतनी सूक्ष्म होती हैं कि उन्हें भाषा के माध्यम से व्यक्त करने में कवि अपने आपको असमर्थ पाता है, तब वह प्रतीकों का आश्रय लेता है। 'हिन्दी शब्दकोशों के आधार पर प्रतीक के विभिन्न अर्थ हैं– चिह्न, लक्षण, आकृति तथा किसी के स्थान पर अथवा बदले में रखी हुयी कोई वस्तु आदि।'[12] लोकमान्य तिलक ने प्रतीक शब्द को 'प्रतिः' तथा 'इक' के योग से निष्पन्न माना है और इसका धात्वर्थ निकाला है 'अपनी ओर झुका हुआ'।[13] इसके अतिरिक्त प्रतीक के विभिन्न पर्याय अथवा समभावद्योतक तक शब्द हैं– प्रतिच्छाया, प्रतिबिम्ब, प्रतिकृति, प्रतिरूप तथा प्रतिनिधि आदि। इन शब्दों के अर्थ स्वतः स्पष्ट हैं और किसी प्रकार की व्याख्या की अपेक्षा न रखते हुये प्रतीक की विभिन्न विशेषताओं को ही प्रकट करते हैं।

हिन्दी में प्रतीक शब्द अंग्रेजी के 'सिम्बल' शब्द के पयार्य के रूप में प्रयुक्त होता है। वहाँ प्रतीक शब्द के विभिन्न अर्थ हैं– कोई ऐसा चिह्न जिससे कोई वस्तु जानी जाये, कोई परम्परागत संकेत जो कभी–कभी व्यक्ति द्वारा स्वयं भी प्रयुक्त होता है तथा किसी अन्य तत्व अथवा पदार्थ का प्रतिनिधित्व करने वाला।[14]

प्राचीन भारतीय एवं विश्व साहित्य में प्रतीकों का महत्व सर्वदा विद्यमान रहा है। वेद, उपनिषद तथा पुराण साहित्य में प्राप्त लगभग सभी कथाओं का प्रतीकात्मक अर्थ तथा महत्व है। भारतवर्ष में लक्ष्मी, सरस्वती, शक्ति, विष्णु, शिव, इन्द आदि सभी देवी–देवताओं का प्रतीकात्मक महत्व है। यूनानी पुराकथाओं में डाइनिसस जीवन की मस्ती का प्रतीक है, अपोलो विवेक अथवा संयम का, वीनस प्रेम का तथा मिनर्वा ज्ञान का प्रतीक है। भारतीय मनीषियों ने अपने विभिन्न दार्शनिक सिद्धान्तों को भी प्रतीकों में निबद्ध कर प्रस्तुत किया था। इसके ठीक समानान्तर प्रतीकवेत्ता **लेंगर** ने प्रतीक विधान पर दार्शनिक दृष्टि से विचार करते हुये प्रतीक सृजन के लिये आश्रय, आलम्बन तथा धारणा को आवश्यक माना है। **लेंगर** के अनुसार प्रतीक उन्हीं विभिन्न धारणाओं के वातायन हुआ करते हैं।[15] इस प्रकार पुराकथाओं में प्राप्त प्रतीक मानव मन की विभिन्न धारणाओं की ही अभिव्यक्ति कहे जा सकते हैं।

काव्य में प्रतीकों का महत्व स्वयंसिद्ध है। इनके प्रयोग से भावों में संप्रेषणीयता एवं वर्णन में मार्मिकता आ जाती है। ये प्रतीक केवल अर्थबोध ही नहीं कराते वरन् भावनाओं को उद्वेलित भी करते हैं। संवेदनाओं को मूर्तता और वास्तविकता प्रदान करने के लिये प्रतीक अपना विशिष्ट महत्व रखते हैं। इन्हें अपनाकर कवि अपने सौन्दर्यबोध को रूपायित करता है। कवि का सौन्दर्यबोध जितना तीव्र एवं सूक्ष्म होगा उसका प्रतीक विधान भी उतना ही सशक्त और विशिष्ट होगा। प्रतीकों की वांछनीयता को समस्त कवियों ने

स्वीकार किया है। छायावादी काव्य प्रतीकों की दृष्टि से अत्यन्त समृद्ध रहा है। छायावाद के प्रमुख कवियों ने परम्परागत एवं नवीन प्राकृतिक प्रतीकों को ग्रहण करके अपने काव्य को अनन्त वैभव और सौन्दर्य प्रदान किया। 'प्रसाद', 'निराला', 'पंत' एवं 'महादेवी वर्मा' के प्रतीक सूक्ष्म एवं आध्यात्म की आभा से मण्डित हैं। ये प्रतीक कवियों की रहस्यानुभूति को सफलतापूर्वक प्रकट करने में सहायक हुये हैं, क्योंकि प्रतीक सूक्ष्म से सूक्ष्म भाव प्रकाशन की क्षमता रखते हैं। प्रतीकों का वैशिष्ट्य भावों को यथावत् अर्थायित करने में ही है। इनके माध्यम से एक साथ अनेक भावों को अभिव्यक्ति प्रदान की जा सकती है। इस दृष्टि से भी प्रतीकों की अनिवार्यता और अधिक बढ़ जाती है। प्रतीकों की अनिवार्यता को 'प्रसाद जी' ने इन शब्दों में स्वीकारा है– 'सौन्दर्यबोध बिना रूप के हो ही नहीं सकता। सौन्दर्य की अनुभूति के साथ ही साथ हम अपने संवेदन को आकार देने के लिये भी उसका प्रतीक बनाने के लिये बाध्य हैं।'[16]

काव्यबिम्ब और प्रतीक योजना की स्वरूपगत विशेषताओं में पर्याप्त साम्य है। इस साम्य से यह अभिप्राय सर्वथा नहीं लेना चाहिये कि दोनों के स्वरूप में कोई मूलभूत अन्तर नहीं है अथवा इनमें कोई एक–दूसरे का स्थानापन्न हो सकता है। दोनों की निर्माण प्रक्रिया में काफी समानता होने पर भी दोनों का व्युत्पन्न रूप एक–दूसरे से सर्वथा पृथक होता है। मुख्य रूप से बिम्ब का सम्बन्ध कविता के शोभाधर्म अथवा अभिव्यक्ति के उपकरणों की उत्कृष्टता से होता है और प्रतीक का उसके आलम्बनगत धर्म अथवा साध्य से। किसी आत्यंतिक कलावादी कलाकार की कृति का साध्य भी उसका बिम्ब संयोजन होना संभव है, किन्तु उस दशा में भी वह कृति किसी न किसी रूप में अपना प्रतीकात्मक अर्थ अवश्य ही सुरक्षित रखेगी।

प्रतीक का सम्बन्ध काव्यगत साध्य अथवा विशेषतः प्रतिपाद्य से होता है और प्रतिपाद्य में कवि विशेष की निजी मान्यताओं, धारणाओं एवं व्यक्तित्व की विशेषताओं का

अन्तर्भाव हुआ करता है। इस कारण किसी काव्यगत प्रतीक–संयोजन को उसके आश्रय के व्यक्तित्व से अलग करके नहीं देखा जा सकता। प्रतीक – संयोजन उसके संयोजक के व्यक्तित्व का निश्चित प्रतिफलन होता है और प्रतीक अपनी यात्रा में उसके बिम्ब बोध के मार्ग में तय करते हैं। इसी कारण प्रतीक को बिम्ब का विकसित सोपान अथवा पूर्ण निष्पन्न रूप भी माना गया है। बिम्ब बोध तथा प्रतीक संयोजन का सम्बन्ध इनके प्रयोक्ता के व्यक्तित्व से है क्योंकि उस व्यक्तित्व के अनुरूप ही इन दोनों का काव्यात्मक स्वरूप रूपायित होता है।

कवि मयंक सहज मनः स्थिति के संवेदनशील कवि हैं। उनके काव्य में स्वच्छन्द प्रतीकों की सृष्टि हुयी है। प्रतीक–योजना के प्रति मयंक जी में काव्य–सृजन के प्रारम्भ से ही आग्रह का भाव दिखायी देता है। प्रेम की विरहजन्य स्थितियों एवं अपनी मार्मिक अनुभूतियों को व्यक्त करने के लिये उन्होंने अनेकानेक उपमानों तथा प्रतीकों का आश्रय लिया है। प्रतीकों का निर्माण उपमा, रूपक और अन्योक्ति पर आधारित होता है। प्रतीक अप्रस्तुत वस्तु को प्रस्तुत करके वर्ण्य विषय को साकारता प्रदान करते हैं। अतः हृदय की मार्मिक अनुभूतियों के प्रकाशन के लिये मयंक जी ने परंपरागत एवं नवीन दोनों वर्गों के प्रतीकों की संयोजना की है। उनका प्रतीक विधान उनकी मौलिक विशेषताओं एवं प्रारम्भिक संवेगों का समरूप संवाहक है। उनकी प्रतीक योजना सहज, भाव प्रबलता एवं अनुभूति सघनता से सम्प्रेरित है। कवि की भावतीव्रता स्वाभाविक रूप से नवीन प्रतीकों की सृष्टि कर देती है। उनके नवीन प्रतीकों में सौन्दर्य मूल्यों एवं नवीन कल्पनाओं का समावेश हुआ है–

छायावादी प्रतीक–

(1). *"हरे हरे परिधान पहन कर प्रेयसी तुम पावस में आतीं*

तुम्हीं पहिन वासन्ती चोली भर-भर झोली सुमन लुटाती।" [17]

(2). *"उषा बताने दौड़ी आती, जब तुम मन्द-मन्द मुस्कातीं*

निज सुन्दर सुविशाल भाल पर लाल-बाल-रवि-बिन्दु लगातीं।" [18]

(3). *"उषा के अंचल में छिपकर*

किसने प्रणय भैरवी गायी

उर में प्रेम, प्रेम में पीड़ा,

पीड़ा में भर दी मधुराई।" [19]

(4). *"अगणित अधरों पर आशा के नव हेमन्त शिशिर मुस्काये*

कोटिक कंठों को बसंत ने सुन्दर सुमन हार पहनाये

किन्तु अभी कितने ही नीरव

नयनों में बरसात शेष है।" [20]

(5). *"निशि सी काली अलकें समेट*

ओढ़ा अरूणोदय सा अंचल।" [21]

(6). *"रात आयी महावर रचे साँझ की,*

भर रहा माँग सिन्दूर सूरज लिये।" [22]

छायावादी प्रतीकों के साथ ही कवि ने प्रकृत वर्ग के प्रतीकों का प्रयोग भी बहुलता से किया है। अपनी विरहजन्य अनुभूतियों को प्रकृत वर्ग के प्रतीकों के माध्यम से व्यक्त करने में यह नवीन प्रयोगशीलता है, जिसमें कवि पूर्णतः सफल भी हुये हैं। इन प्रतीकों से उनके विसारी मन की अभिव्यक्ति बड़ी सहजता से हुयी है–

(1) *"कब तक तड़पे रात अंधेरी, कब तक सिसकी भरें सितारे,*

आज चाँद बनकर आ जाओ, नील गगन् के आंगन-द्वारे।" [23]

(2) *"पत्तों की गोद में नयी कलियाँ तो सो गयीं*

रंगीन मधुर सपनों की गलियों में खो गयीं।

कुछ फूल तड़पते रहे कांटों की सेज पर,

बेचारे अभी दर्द के मारे नहीं सोये।" [24]

(3) *"व्यर्थ बहती रही आंसुओं की नदी,*

प्राण आये न तुम नेह की नांव में,

खोजते-खोजते तुमको लहरें थकीं

अब तो छाले पड़े लहर के पांव में।" [25]

प्रकृति से ग्रहीत प्रतीकों को कहीं–कहीं कवि ने नितान्त वैयक्तिक अर्थों में प्रयुक्त किया है। ये वैयक्तिक प्रतीक उनकी विरहजन्य भावना को अर्थायित तो करते हैं, किन्तु अपरम्परात्मक ढंग से, क्योंकि प्रतीक परम्परा में स्वीकारें जाने के पश्चात ही काव्योचित् माने जाते हैं। यद्यपि मयंक जी ने अनेक उपमानों का प्रयोग छायावादी कवियों की तरह किया है, तथापि ये प्रतीक छायावादी बौद्धिक दुरूहता से मुक्त हैं।

हालावादी प्रतीक

मयंक जी ने अपने काव्य में कहीं–कहीं हालावादी प्रतीकों को भी ग्रहण किया है। प्याला, मादक मदिरा आदि मधुचर्या से सम्बन्धित प्रतीकों को उन्होंने बड़ी सहजता से अपनाया है–

(1) *"लघु प्याले मादक मदिरा से।"* [26]

(2) *"मधुरस के मीठे घूंट नहीं कटु हाला है मेरा जीवन।"* [27]

(3) *"छलक रही है प्रेम की हाला*

सारा जग है पीने वाला।" [28]

प्रगतिशील भावों की उदघाटित करते प्रतीक

मयंक जी विरह एवं प्रकृति जैसे विषयों की अपेक्षा सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना के ज्यादा करीब हैं एवं उनकी ज्यादातर कवितायें इन्हीं विषयों पर हैं। तत्सम्बन्धी विषयों

पर काव्य सृजन में उन्होंने नवीन प्रतीकों का सृजन अत्यन्त सफलतापूर्वक किया है–

(1) *"जहाँ भूमि पर चलते-फिरते पाषाणों में प्राण है।"* [29]

(2) *"गाओ ऐसा अनल गान यह धूप पिघल जाये।"* [30]

(3) *"अपनी आँखों से अधनंगी भिखमंगी शहजादी देखी।"* [31]

(4) *"शबनम में भीगी हुयी नहीं, आंसू में डूबी फुलवारी।"* [32]

(5) *"एक बस्ती जहाँ इंसान अभी गूंगा है,*

एक बस्ती जहाँ भगवान अभी बहरा है।" [33]

सांस्कृतिक प्रतीक

(1) "है प्यार ही वृन्दावन, आँसू ही तो गंगा है।

है आदमी ही मन्दिर, जनता ही अजन्ता है।" [34]

(2) *"राधा नयन में उसके, मीरा है मन में उसके।*

हर आह में जो कान्हा की बाँसुरी सुनता है।" [35]

(3) *"प्रीति का गीत ऊँचा रहेगा सदा, नाश-संहार-संग्राम के सामने।*

सिर झुकाना पड़ेगा परशुराम को शान्ति के देवता राम के सामने।" [36]

उपरोक्त उदाहरणों से स्पष्ट है कि मयंक जी ने अपने काव्य में सांस्कृतिक एवं ऐतिहासिक प्रतीकों का भी सुन्दर एवं सटीक प्रयोग किया है जो कि अर्थ विशेष के अभिप्रेय में साधक हैं, बाधक नहीं। मयंक जी के प्रतीक सृजन में मौलिकता एवं नवीनता है। उनके काव्य में सभी वर्गों के प्रतीकों का समावेश हुआ है। उनके प्रतीकों में नवीनता का प्रयोग कवि की मौलिक प्रतिभा का परिचायक है। जीवनानुभूतियों द्वारा स्वीकृत होने के कारण इन प्रतीकों की सरलता एवं सहजता ही विशिष्ट लगती है। मन की गहरी संवेदनाओं में डूबे ये प्रतीक काव्य को अर्थवत्ता प्रदान करने में पूर्णतः सक्षम हैं। मयंक जी

के काल में अन्य प्रतीकों के अतिरिक्त सैद्धान्तिक प्रतीकों के अन्तर्गत दार्शनिक, राजनीतिक एवं वैज्ञानिक प्रतीक भी प्रयुक्त हुए हैं।

सैद्धान्तिक प्रतीक

इन प्रतीकों के अन्तर्गत राजनीतिक, वैज्ञानिक एवं दार्शनिक प्रतीकों की गणना होती है। मयंक जी के काव्य में जहाँ–तहाँ ये प्रतीक भी लक्षित हो जाते हैं–

(1) *"आजादी के खेत जिन्हें सींचा है अपने खून से*
फिर न उजाड़ें उनको चुगकर कहीं फूट की चिड़िया रे।।" [37] *(राजनीतिक)*

(2) *"मेरा गोकुल-वृंदावन गंगा-यमुना से दूर है,*
छल-छल बहती व्याकुल आंसू की घाटों के पास हैं।" [38] *(दार्शनिक)*

प्रतीक योजना के क्षेत्र में भी समीक्ष्य कवि का काव्य कम समृद्ध नहीं है। सभी प्रकार के प्रतीक उनके काव्य में उपलब्ध होते हैं। कुछ प्रतीक परम्परागत तथा रूढ़ हैं, लेकिन वे भी नव–नव अर्थों में प्रयुक्त होने के कारण नवीनता सम्पन्न ही लगते हैं, विरसता उत्पन्न नहीं करते। मयंक जी के काव्यगत बिम्बबोध तथा प्रतीक संयोजन की एक विशेषता यह भी है कि इन दोनों को उनके व्यक्तित्व के भोगे हुये यथार्थ की प्रामणिकता उनकी कविता को एक काल और स्थान सापेक्ष रूप प्रदान करती है क्योंकि उन्होंने अपनी वैयक्तिक चेतना को समष्टि चेतना में प्रक्षिप्त कर दिया है। उनके काव्य में सम–सामायिकता भी है और शाश्वतता भी। उनके व्यक्तिगत तथा सामाजिक जीवन की सब सम–सामयिकता में उनके शाश्वत काव्य मूल्यों इस प्रकार से ढल गयी हैं कि दोनों में कोई अन्तर प्रतीत नहीं होता। इस प्रकार बिम्ब विधान की भाँति मयंक जी का प्रतीक विधान भी नवीन कलात्मक गुणों से युक्त होकर प्रस्तुत हुआ है।

3- छन्द

छन्द कविता का सबसे बड़ा उपकरण है। छन्द ही काव्य को गेंयता प्रदान करते हैं। मयंक जी का काव्य गीतिकाव्य है। उनके गीतों का मूलाधार लय है। लय के लिये तुकान्त होना आवश्यक है। उनके तुकान्त अथवा अतुकान्त छन्द विशिष्टता और वैविध्य लिये हुये हैं, जिनमें उनके अद्‌भुत शिल्प चातुर्य का परिचय मिलता है। उनके छन्दों में अविरल सरलता एवं प्रवाह है। तुकान्त छन्द उन्हें प्रिय है। उन्होंने काव्य में विविध छन्दों का प्रयोग किया है। उन्होंने शास्त्रीय छन्दो का प्रयोग नहीं किया है। उन्होंने अपने काव्य में मुक्त छन्दों का प्रयोग नवीनता के साथ किया है। उनके छन्द उनकी स्वच्छन्द प्रवृत्ति की तरह ही स्वच्छन्द हैं। कहीं–कहीं मुक्तक में फारसी रूबाई की झलक भी दिखायी दे जाती है, वे लोकधुनों के आधार पर गीतों की रचना भी बड़ी कुशलता से कर लेते थे। इनके सभी छन्द गीत शैली पर आधारित हैं। छन्दों की मात्रा विधा, अन्त्यक्रम, यति और चरण विचार में नवीनता और स्वतंत्रता दिखाई देती है।

मयंक जी ने हिन्दी कविता में लोच एवं कमनीयता के लिये उर्दू छन्द जैसे गज़ल एवं रूबाई आदि का भी प्रयोग किया है। यद्यपि उर्दू की दस्तक हिन्दी साहित्य में द्विवेदी युग से ही सुनायी देने लगी थी, जब पं0 अयोध्या सिंह उपाध्याय 'हरिऔध', श्री मैथिली शरण गुप्त, गया प्रसाद शुक्ल 'सनेही', लाला भगवान दीन 'दीन', सबने उर्दू बहरों में रचना की। हरिऔध जी के चौपदें इन्हीं में लिखे गये। गुप्त जी ने उमरखैय्याम की रूबाइयों का रूबाई छन्द में ही अनुवाद किया। 'सनेही जी' ने रूबाइयाँ लिखीं और 'दीन' जी ने गज़लों की रचना की। किसी ने उर्दू के छन्द एवं उर्दू की लय दोनों को एक साथ ही स्वीकार किया, तो किसी ने हिन्दी के छन्दों में उर्दू का तर्ज मिला दिया। छन्द विधान के संदर्भ में शुरू हुयी इस परम्परा का बाद के कालखण्डों में भी विभिन्न कवियों

द्वारा अनुसरण किया जाता रहा। मयंक जी ने भी अपने काव्य सृजन में उर्दू 'गज़ल' एवं फारसी 'रूबाई' का प्रयोग बहुतायात से किया है–

गज़ल

"उषा बताने दौड़ी आती जब तुम मन्द-मन्द मुस्कातीं
निज सुन्दर सुविशाल भाल पर लाल बाल-रवि-बिन्दु लगातीं
शशि छिटकाता रूप ज्योत्सना जब तुम कर में मुकुर उठातीं।
कर देती संकेत अमां जब तुम उलझी अलकें सलझातीं।" [39]

और

"जाने क्यों जग में मिट-मिट कर बनने का अभ्यास शेष है
उस असीम में सीमाओं के बन्धन की अभिलाष शेष है
मिटता जाता जीवन फिर भी जग में जीवन प्यास शेष है
मानो उस जग निर्माता के उर में यह विश्वास शेष है।" [40]

रूबाई

"आधी दूर नहीं चल पाया और थके हैं पांव रे,
अभी बहुत चलना है तुझको, अभी दूर है गांव रे,
गहरा जल हो लहरें चंचल, आंधी तूफानों की हलचल,
तेज धूप में भी बढ़ता चल, खोज न ठंडी छाँव रे।" [41]

और

"हमने जिसको गले लगाया कहकर अपना भाई,
आज उसी भाई ने है हम पर तलवार उठाई,
हमने अमृत दिया जिसे वह विष लेकर आया है,
मानवता ठुकराकर जिसने दानवता अपनाई।" [42]

'रूबाई' अरबी, फारसी का चार मिसरों (पदों) का छन्द होता है, जिसमें 'पहले, दूसरे एवं चौथे मिसरों की तुक मिलती है जबकि तीसरा तुकहीन होता है। हिन्दी में सर्वप्रथम मैथिली शरण गुप्त ने उमर खैय्याम की रूबाइयों का अनुवाद किया। हरिऔध जी ने रूबाई के अनुकरण पर चौपदे लिखे। प्रयोगवादी कवियों ने इसका बहुलता से

प्रयोग किया है। मयंक जी ने भी अपने गीतों में रूबाई को हिन्दी की प्रकृति के अनुकूल ढालकर उसे भारतीय वेशभूषा प्रदान कर दी है।

रूबाई एवं गज़ल उर्दू एवं फारसी के सर्वाधिक प्रचिलित छन्द हैं जिसका हिन्दी में प्रयोग बड़ी संख्या में कवियों ने किया है। परन्तु मयंक जी ने उपरोक्त वर्णित छन्दों के अतिरिक्त 'मुसद्दस' एवं 'मुसल्लस' जैसे छन्दों का प्रयोग भी हिन्दी काव्य में अत्यन्त कुशलता से किया है। 'मुसद्दस' वह रचना होती है जिसमें छः मिसरे हों। इसके पहले चार मिसरों का तुक एक समान होता है एवं अन्तिम दो का तुक दूसरा होता है। उर्दू में यह छन्द भाव–जाग्रत करने के लिये बहुत उपयुक्त माना जाता है। इसीलिये भारतीय स्वतन्त्रता संग्राम के दौरान मुसद्दस को हिन्दी कवियों ने भी अपनाया। ये मुसद्दस–रूप में लिखी गयी कवितायें **'षटपद'** एवं **'छतुका'** आदि अनेक नामों से प्रचिलित हुयीं। मयंक जी ने उर्दू के इस प्रचलित छन्द का प्रयोग भी अपने गीत सृजन में किया है–

मुसद्दस

"हम जिनकों प्यार दें वही हमको सजा न दें,
हमदम जो हम सफर हैं कहीं वो दगा न दें,
इस लहलहाते बाग को दुश्मन जो आग दे,
सींचा है हमने जिनको वो पत्ते हवा न दें,
हर फूल को सजाओ शूल से, त्रिशूल से,
कहती है चीख-चीख के कोयल ये बाग से।" [43]

'मुसद्दस' के अतिरिक्त उर्दू कविता के एक और छन्द 'मुसल्लस' का प्रयोग भी मयंक जी ने अपने काव्य में किया है। इस छन्द में तीन मिसरे होते हैं–

मुसल्लस

"आज देश का भाल सजाओ,

शीश-सुमन-जयमाल सजाओ,

माता का पूजा-थाल सजाओ।" [44]

मयंक जी के ऐसे गीतों की संख्या सर्वाधिक है जिनमें उर्दू के उपरोक्त छन्द–विधान सम्बन्धी प्रभाव पाये जाते हैं। मयंक जी ने अपने काव्य में नवीन छन्दों को भी ग्रहण किया है–

"हर पनघट पर रार मची है,
कहीं न वंशी-ध्वनि आती,
कहीं न पीताम्बर लहराता
कहीं न होती संझवाली,
लुटे न माखन की गगरी,
गली-गली है डरी-डरी
वन-वन डोली फिरी राधिका, मधुवन अभी नहीं आया।" [45]

और

"अभी देश में न्यायनीति भी
समर्थ का कर रहे समर्थन;
जनहित की छाती पर होता,
अधिकारों का ही अभिनन्दन;
अभी दीन, असमर्थ, अकिंचन
पर अन्यायाघात शेष है।" [46]

गीतकाव्य का अनिवार्य तत्व है संगीत। संगीतात्मकता का मात्रा भेद ही उसे काव्य के अन्य रूपों से स्पष्टतः भिन्न करता है। गीतकाव्य में संगीत का स्वाभाविक आग्रह होता है, अतः एक उन्मुक्तता होती है। संगीत भावों के तद्‌रूप स्फुरण में सहायक होता है। गीतकाव्य का संगीत सोये भावों को जगा देता है। संगीत में लिपटे हुये शब्द एवं भाव बड़ी सुगमता से प्राणों को आह्लादित कर पाते हैं एवं छन्दों की संगीतात्मकता के लिये तुकों का महत्व सर्वविदित है। महाकवि सुमित्रानन्दन पन्त ने लिखा है, 'तुक राग का

हृदय है जहाँ उनके प्राणों का स्पंदन विशेष रूप से सुनायी देता है। राग की समस्त छोटी बड़ी नाड़ियां मानों अन्त्यानुप्रास के नाड़ी–चक्र में केन्द्रित रहती हैं जहाँ से नवीन बल तथा शुद्ध रक्त ग्रहण कर छन्द के शरीर में स्फूर्ति का संचार करती रहती हैं। जो स्थान ताल में राग का है, वही स्थान छन्द में तुक का।'[47] मयंक जी ने अपने काव्य में छन्द के उपरोक्त सांगीतिक महत्व को कभी नहीं नकारा है और तुकों के द्वारा काव्य में सांगीतिक तत्व को सदैव बनाये रखा है।

इस प्रकार छन्द विधान की दृष्टि से भी मयंक जी कम महत्वपूर्ण नहीं है। उनके छन्दों में सम्यक गति प्रवाह है और गीतों में सहज सांगीतिक लयात्मकता। मयंक जी ने छन्दों के सयत्न प्रयोग का प्रयास अपने काव्य में कभी नहीं किया, ऐसा प्रतीत होता है कि कवि के हृदय में भावनायें जिन शब्दों में और जितने शब्दों में उठीं कवि ने उन्हें जैसा का तैसा कागज पर उतार दिया है। उनकी कविताओं में आद्यान्त छन्द की शास्त्रीयता का निर्वाह प्रायः नहीं मिलता। छन्दों के ढीले–ढाले होने का जहाँ तक प्रश्न है, वे अवश्य सुगढ़ हैं। नवीन छन्दों की अवतारणा उन्होंने नहीं की वरन् प्रचलित गीत रूपो को भी नवीन ढंग से प्रस्तुत किया है। किसी भी परम्परागत छन्द को उन्होंने इसलिये नहीं अपनाया है कि वह पारम्परिक है और उसमें कविता करना ही कविकर्म है।

4- अलंकार

बिम्बों और प्रतीकों की तरह अलंकारों के प्रयोग में भी मयंक जी ने अपनी प्रखर काव्य प्रतिभा का परिचय दिया है। प्रतीकों एवं बिम्बों की तरह उनकी अलंकरण विधि का भी विशिष्ट महत्व है। मयंक जी अलंकार प्रिय कवि नहीं है और न ही उनकी कविताओं में अलंकारों का बाहुल्य है। अलंकारों का वैभव उनके काव्य में जहाँ–तहाँ आलोकित है। अलंकरण की दृष्टि से मयंक जी के काव्य में रूपक, अनुप्रास, मानवीकरण, उपमा, पुनरूक्ति–प्रकाश, विरोधाभास आदि अलंकारों के उदाहरण मिल जाते हैं। मयंक जी ने

प्रकृति का भी मानवीकरण करके उसे अतुल सौन्दर्य से विभूषित किया है। साम्य सूचक अलंकार भी उनके काव्य में दृष्टव्य हैं। साम्य सूचक अलंकारों में रूप, रंग, गुण या भाव के आधार पर उपमेय की उपमान से समता की जाती है। भावसाम्य के आधार पर मयंक जी ने अमूर्त के लिये मूर्त और मूर्त के लिये अमूर्त उपमानों की संयोजना की है। रूपकों का प्रयोग मनोरम है। विरोधाभास का चमत्कार भी चमत्कृत किये बिना नहीं रहता। उनके काव्य में पुनरूक्ति अलंकार की छटा भी जहाँ–तहाँ दिखायी दे जाती है। मयंक जी के काव्य में अलंकारों का प्रयोग उसी सीमा तक हुआ है जहाँ तक वह सहज रूप में ग्राह्य हैं। उनके अलंकार, अलंकार मात्र न होकर वचन विदग्धता, भाव भंगिमा और अर्थ साक्षात्कारी व्यन्जना की संयोजना भी करते हैं। अलंकार कवि के भावों को रमणीय बनाकर रसवृद्धि में सहायक हुये हैं। उनके काव्य में प्राप्त होने वाले कुछ अलंकारों के उदाहरण दृष्टव्य हैं–

रूपक–(1) *"हर दीपशिखा को चूम रहा*

मैं वह पतंग जलने वाला।" [48]

(2) *"रात विरह की आग, प्रात है*

मधुर मिलन की फाग रंगीली।" [49]

(3) *"तुम्हीं ग्रीष्म में बन वियोगिनी विरहानल से विश्व तपाती।"* [50]

(4) *मेरे नैंनों के द्वारा खोल* [51]

मानवीकरण

(1) *"रात आयी महावर रचे साँझ की*

भर रहा माँग सिन्दूर सूरज लिये।" [52]

(2) *"धूप की पालकी पर किरन की दुल्हन*

आ के उतरी खिला हर सुमन हर चमन।" [53]

(3) *"मध्यस्थ धवल सरिता तट पर*

निकला हँसता रवि बाल विमल।" [54]

(4) *"कमल नयन चूम रही प्रात किरण कामिनी।"* [55]

(5) *"उषा बताने दौड़ी पाती जब तुम मन्द मन्द मुस्काती।"* [56]

(6) *"अगणित अधरों पर आशा के नव हेमन्त शिशिर मुस्काये।"* [57]

(7) *"लघु प्याले मादक मदिरा से*

क्षण-क्षण अपना उर भरते हैं।" [58]

अनुप्रास

(1) *"हेम हिम किरीटिनी, विशाल भाल भामिनी।"* [59]

(2) *"तृण-तृण की तृष्णा मिट जाती।"* [60]

(3) *"कंचन कीर्ति कोकिला कूकी।"* [61]

(4) *"कानन के कलित कुंज में ही कलिका मधुरस पराग पाती।"* [62]

(5) *"जब पिघल पड़े पाषाण तुम्हारे रोदन से, तुम कवि हो।"* [63]

विरोधाभास

(1) *"अंग-अंग अंगारों से श्रृंगार किये फिरता हूँ,*

मुझे तृषा की जलन नहीं है आग पिये फिरता हूँ।" [64]

(2) *"जिस दिन ज्वाला से तुमने मेरा अभिषेक किया था,*

हृदय जलाकर प्रभा लुटाने का वरदान दिया था।" [65]

मयंक जी के काव्य का अध्ययन करने से ज्ञात होता है कि उन्होंने अलंकारों को अपना ध्यये नहीं माना है। वे स्वतः उनके काव्य में आ विराजे हैं। वे भावोत्कर्ष के साधन के रूप में आये हैं। भाव ही उनके काव्य का प्राण, शरीर और प्रसाधन है अतः

भावातिरेक के सूर्यातप में उनके काव्य के अन्य उपकरण नक्षत्रों की मंदप्रभा ही विकीर्ण कर पाये हैं। इस प्रकार मयंक जी मुख्यतः अलंकारवादी नहीं हैं। उनके काव्य में रस और भाव की प्रधानता ही परिलक्षित होती है। मयंक जी ने अपने मधुर गीतों को जिस अभिव्यक्ति और शैलियों द्वारा व्यक्त किया है उसमें अनुप्रास और उसके भेद ही मुख्य रूप से परिलक्षित होते हैं, जो माधुर्य को आश्रय देते हैं। एक दूसरी विशेषता मानवीकरण की परिलक्षित होती है। इस अलंकार का प्रयोग कवि ने बहुतायत से किया है किन्तु सर्वत्र सहजता दिखायी देती हे। इससे ज्ञात होता है कि कवि का प्रकृति के साथ सघन और रागात्मक सम्बन्ध है। उसका जीवन प्राकृतिक सुषमा से भरपूर बेतवा के ग्राम्यांचल से जुड़ा है जहाँ नदी का उन्मुक्त रूप तथा नदी का तटवर्ती प्रदेश कविता के बिम्बों में अलंकारों के रूप में सहज ही अभिव्यक्त होता है।

5- रस

भारतीय जीवन के विभिन्न क्षेत्रों में रस शब्द का प्रयोग सर्वोत्कृष्ट तत्व के लिये होता है। आध्यात्म के क्षेत्र में ईश्वर को रस की संज्ञा दी गयी है। साहित्य के क्षेत्र में काव्य के आस्वादन से प्राप्त आनन्दानुभूति को रस की संज्ञा दी गयी है। रस काव्यजन्य आनन्द का ही दूसरा नाम है, इसमें पाठक को उद्वेलित करके आनन्दानुभूति प्रदान करने की क्षमता होती है।

रस सिद्धान्त के प्रवर्तक **आचार्य भरत मुनि** माने जाते हैं। भारतीय काव्यशास्त्र में मुख्यतया श्रृंगार , वीर, करुण , वीभत्स, भयानक, अद्‌भुत् , रौद्र, हास्य एवं शान्त आदि नौ रस माने गये हैं। आधुनिक विचारकों में आचार्य रामचन्द्र शुक्ल, डॉ0 नगेन्द्र ने रस सिद्धान्त की नवीन व्याख्यायें प्रस्तुत की हैं।

रस सिद्धान्त जीवन के सुन्दर और कुरूप सभी पक्षों को काव्य में स्थान देने का समर्थन करता है। केवल श्रृंगार, वीर एवं करुणा में ही नहीं, वीभत्स, भयानक और रौद्र

आदि रसों में भी रसानुभूति प्रदान करने की पूरी क्षमता है। रस निष्पत्ति का मूलाधार सौन्दर्यानुभूति है। जब हम कवि मयंक की रस योजना पर विचार करते हैं तब हमारा ध्यान सर्वप्रथम इस ओर जाता है कि मयंक जी ने किसी प्रबंध कृति का निर्माण न कर मुक्तक काव्य को ही अपनाया है और स्फुट गीतों में ही अपने उद्गार व्यक्त किये हैं। अतएव उनके काव्य में सभी रसों की न्यूनााधिक अभिव्यक्ति की आशा रखना भी अनुचित ही कहा जायेगा क्योंकि केवल प्रबन्ध काव्यों में ही विभिन्न रसों की योजना के लिये पर्याप्त गुंजाइश रहती है और मुक्तक काव्य में तो किसी रस विशेष की ही अभिव्यक्ति हो पाती है।

मयंक जी के गीत प्रमुख रूप से करुण रस, वीर रस, श्रृंगार रस एवं शान्त रस की नवीन उद्भावनाओं से भरे पड़े हैं। श्रृंगार का मूलभाव रति अथवा काम है। सौन्दर्य को देखकर जो आनन्दानुभूति होती है, वहीं प्रेम में परिवर्तित होकर रतिभाव का संचार करती है। श्रृंगार के मूल में प्रेम की महत्वपूर्ण भूमिका होती है। श्रृंगार की आधारभूमि नारी–पुरुष का यौवनगत आकर्षण होता है यही आकर्षण हृदय में प्रेम की सृष्टि करता है।

साहित्य अथवा काव्य में प्रेम का स्वरूप परिवर्तित होता रहता है। सामाजिक मूल्यों के संदर्भ में भी प्रेम परिवर्तनशील रहा है। हिन्दी साहित्य के आदिकाल में श्रृंगार रस परिष्कृत एवं परिपक्व रूप में चित्रित हुआ। भक्तिकाल अथवा मध्ययुग में श्रृंगार और प्रेम को एक नवीन भावभूमि प्राप्त हुई है। इस काल में प्रेम, व्यापक रूप में आध्यात्मिक और आस्तिकता की भावभूमि ग्रहण कर लेता है। यह प्रेम, भक्ति का पर्याय माना जाता था। भक्तिकाल के प्रेम में श्रृंगार रस को एक नयी दिशा मिली। भक्ति साहित्य में प्रेम का स्वरूप पूजा का भाव लेकर विस्तृत हुआ जिसमें एक अलौकिक आनन्द की प्राप्ति होती थी। मीरा, सूर, तुलसी आदि भक्त कवियों का प्रेम–काव्य इसी कोटि का था।

रीतिकाल में प्रेम और श्रृंगार परिवर्तित मूल्यों को लेकर उदित हुआ। इस काल में प्रेम और श्रृंगार नितान्त लौकिक था। रीतिकालीन कवि नारी सौन्दर्य की वाह्य छटा ही प्रस्तुत करने में रुचि रखते थे। नारी का नख–शिख वर्णन ही इनके काव्य का अभीष्ट था। आधुनिक युग में प्रेम और श्रृंगार को पुनः एक नवीन दिशा मिली। इस युग में प्रेम आदर्श रूप में प्रस्तुत हुआ। भारतेन्दु युगीन काव्य ने प्रेम के सन्दर्भ में भक्तियुगीन परम्परा को ग्रहण किया। नारी को काव्य में पुनः सम्मान प्राप्त होने लगा। प्रेम की भूमिका पर द्विवेदी युगीन कवियों का स्वर भी पर्याप्त संयमित रहा।

आधुनिक काल में छायावादयुगीन काव्य प्रेम के प्रचलित सामाजिक मूल्यों के विपरीत एक नयी सौन्दर्य चेतना के साथ उपस्थित हुआ। छायावादी कवि कविता में मानवीय संस्पर्श की आवश्यकता का अनुभव कर रहे थे। इसके लिये काव्य में उनकी निजी संवेदनाओं का निहित होना आवश्यक था। इसी विचारणा के फलस्वरूप उनके काव्य में प्रेम और श्रृंगार लौकिक रूप में तद्जनित अनुभवों से युक्त अकृत्रिमता के साथ प्रस्तुत हुआ। उनकी प्रेम की आत्मनुभूति ने नारी को आदर्श देवी के स्थान पर प्रिया के रूप में स्वीकार किया। उत्तर छायावादी युग में नारी और प्रेम की स्थिति पुनः श्रृंगार की भूमिका पर प्रस्थापित हुयी। छायावादोत्तर काल में मनुष्य एवं उसकी आशायें एवं आकांक्षायें यथार्थ रूप में साहित्य के केन्द्र में थी अतः सौन्दर्य वर्णन में ऐन्द्रिकता की प्रधानता दिखायी देने लगी तथा नारी–सौन्दर्य आवरणहीन होकर प्रस्तुत होने लगा। उसके आन्तरिक सौन्दर्य को तन और मन की भूमिका में विभाजित करके परखा जाने लगा। नितान्त स्थूल और लौकिक प्रेम ने प्रेम सम्बन्धी अतीत की सामाजिक मान्यताओं पर अतिक्रमण करके पारंपरिक मर्यादाओं पर प्रश्न चिह्न लगा दिया। प्रेम और श्रृंगार की अभिव्यक्ति में कवियों ने एक नवीन दृष्टिकोण अपनाया। नारी मुखर रूप में घर की

प्राचीर से बाहर निकलकर पुरुष की सहचरी बन गई।

मयंक जी की प्रेम एवं सौन्दर्य विषयक कवितायें उनके प्रथम काव्य संग्रह :'**रूपरागिनी**' में प्राप्त होती हैं। मयंक जी की इन कविताओं में युग प्रभाववश वासना एवं मांसलता की दुर्गन्ध नहीं है बल्कि उनका प्रेम पवित्र एवं सप्राण है। उनका उदात्त काव्य लोकरंजन तथा लोकशिक्षण के ध्येय को साथ लेकर आगे बढ़ता है। उनकी कवितायें कही भी सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण करती नहीं दिखायी देती–

"सोने के लिये प्राण अभी रातें बहुत हैं

तुम से अभी कहने के लिये बातें बहुत हैं।

आंखों में अभी नींद का काजल न लगाओ,

देखो अभी अरमान हमारे नहीं सोये।" [66]

मयंक जी का काव्य छायावादोत्तर काल की विकृत ऐन्द्रिकता से मुक्त है। उनके प्रेम गीतों में वह गहनता है जो हृदय को द्रवित करने में समर्थ है–

"रात आई महावर रचे साँझ की,

भर रहा माँग सिन्दूर सूरज लिये,

दिन हंसा चूड़ियाँ लेती अंगड़ाइयाँ,

छू के आँचल बुझे आँगनों के दिये,

बिन तुम्हारे बुझा आस का हर दिया,

तुम न आये, सहारों को नींद आ गई।" [67]

प्रेम का कितना गहन और अद्भुत वर्णन उनके काव्य में है यह वर्णित उदाहरणों से स्वतः स्पष्ट है। उनके प्रेम की पवित्रता और रसोद्भावना का एक ओरे उदाहरण दृष्टव्य है –

"मेरे नयनों के द्वार खोल उर में कोई अति मौन गया,

जब दृग में डोरे लाल मिले, मैंने पहचाना कौन गया,

छू गया कदाचित दृग-तल पर,

रुपसि तेरा सिन्दूर-बिन्दु।" [68]

मयंक जी की प्रेम भावना ऐन्द्रिक नहीं बल्कि आध्यात्मिक थी। प्रेम की कल्पना में यदि अनन्यता, आशा, विश्वास, निश्च्छलता, निस्कामता व पवित्रता आदि गुणों का समावेश हो जाये तो उस प्रेम में बड़ी दिव्यता आ जायेगी; वास्तव में मयंक जी का प्रेम उपरोक्त गुणों से युक्त है, इसीलिये वह दिव्य है–

"किसने अपने उर में मेरे
प्रति अपनत्व ममत्व जगाया
जिसने निज अनुराग अर्चना
अर्पित कर देवत्व जगाया
ऐसी भक्ति भावना किसकी मेरे उर पाषाण छू गयी।" [6]

मयंक जी के गीतों में 'प्रेम', श्रृंगार रस से अधिक करुण रस की उद्भावना का कारण बना है। आधुनिक युग की हिन्दी कविता में करुणा की भावना का अत्याधिक संचार हुआ है। यह भावना गीतियों के लिये सर्वथा उपयुक्त है क्योंकि उसमें परूष भावनाओं का समावेश होता ही नहीं। इसी करुणा के प्रभाव के कारण ही प्रेम के क्षेत्र में मिलन की अपेक्षा विरह के दृश्य ही अधिक दिखायी देते हैं। इसी भावना के वशीभूत होकर अनेक कवियों की भांति मयंक जी को भी विरह और पीड़ा से मोह हो गया है और वे चिर अतृप्ति के आकांक्षी हो गये हैं। वे प्रेम में पाने की चाहत नहीं रखते बल्कि उसमें खो जाने का ख्याल उन्हें भाता है–

"सो जाऊँ सुधि करते-करते

आने लगें स्वप्न जब सुन्दर

मन्दिर-मन्दिर नूपुर ध्वनि करती

चुपके से आना पलकों पर

किन्तु दृगों में ही खो जाना

जब अधीर होकर मैं जागूं।" 70

मयंक जी के रचना संसार पर दृष्टिपात करने से यह तथ्य स्पष्ट हो जाता है कि राष्ट्रभावना एवं सामाजिक चेतना से युक्त कविताओं की अपेक्षा उनका श्रृंगार रस से पूरित काव्य मात्रात्मक दृष्टि से कम अवश्य है परन्तु विशिष्टताओं में कहीं भी कमतर नहीं है। प्रेम सम्बन्धी उनके काव्य में प्रेम का रूप आराधना के स्तर पर प्रतिष्ठित होता दिखायी देता है। रस सृष्टि की दृष्टि से उनकी कवितायें अत्यन्त महत्वपूर्ण एवं उल्लेखनीय हैं। 'रूपरागिनी' एवं 'अभिनन्दन ग्रन्थ' की प्रेम सम्बन्धी कवितायें प्रेम एवं श्रृंगार के क्षेत्र में स्वस्थ एवं परिष्कृत रूप में प्रस्तुत हुयीं। प्रेम और श्रृंगार के प्रति उनका दृष्टिकोण अवश्य ही सराहनीय है। अपनी कविताओं में कवि ने विरहिणी प्रिया के बड़े मधुर कल्पना चित्र अंकित किये हैं–

"सजनि आज ही उन्हें बुला दो

या उर में उन्माद सुला दो

भूल सकूं सुध-बुध अपनी या

मन से मन की बात भुला दो

पिय के हिय में छिप जाने को

रोता है उर क्रन्दन मेरा।" 71

मयंक जी के काव्य में प्रेम ऐन्द्रिकता पर आधारित नहीं है; बल्कि परिष्कृत और उदात्त भूमि पर प्रतिष्ठित है। उनकी श्रृंगारिक रचनायें इसका सशक्त प्रमाण है। मयंक

जी के काव्य में उनकी श्रृंगारिक वृत्ति पूर्णतः अनुशासित होकर प्रस्तुत हुयी है। मनोभावों के प्रकाशन में कवि ने सामाजिक मर्यादाओं का अतिक्रमण कहीं भी नहीं किया है। मयंक जी के काव्य में हम श्रृंगार एवं प्रेमानुभूति को एक नये रूप में देखते हैं। अपनी रचनाओं में कवि स्वाभाविक रूप से नये बोध जगत से सम्बद्ध दिखायी देते हैं। प्रकृति गीतों में कवि की श्रृंगार भावना एक नयी भाषा और नया शिल्प देती है। इन गीतों में कवि की प्रेम–भावना पूर्णतः परिमार्जित होकर प्रस्तुत हुयी है। मयंक जी की प्रेम सम्बन्धी कविताओं में श्रृंगार रस के दोनों पक्ष संयोग–वियोग बड़ी सरलता से प्रवाहित हुये हैं, प्रधानता किन्तु वियोग की ही है। मयंक जी की वियोग श्रृंगार से सम्बद्ध रचनायें अत्यन्त मार्मिक बन पड़ी हैं। उनके काव्य को उल्लासमयी, स्वाभाविक, श्रृंगारिक अभिव्यक्तियाँ सहजता एवं आकर्षण प्रदान करती हैं।

मयंक जी के काव्य का विषय क्षेत्र अत्यन्त व्यापक है। उन्होंने प्रेम और सौन्दर्य के अतिरिक्त अन्य विषय जैसे सामाजिक चेतना, मानवतावाद एवं राष्ट्रीय भावना से युक्त गीतों का भी सृजन किया है जिनमें विषयानुरूप भाव एवं रस का सुन्दर समन्वय मिलता है। मयंक जी की कविता की सबसे बड़ी पूंजी है 'अनुभूति'। उन्होंने जिस भी विषय को छुआ है, गहन भावनाओं ने स्वतः ही ऐसा परिवेश निर्मित कर दिया है जो रसोद्रेक में सहायक है। मयंक जी के काव्य में वीर रस, रौद्ररस एवं शान्त रस के स्वतन्त्र या सम्मिलित उदाहरण जगह–जगह मिल जाते हैं।

साहित्य के क्षेत्र में मयंक जी जिस युग का प्रतिनिधित्व करते हैं वह मुख्यतः स्वतन्त्रता के बाद का समय है। मयंक जी में राष्ट्रीय एवं सामाजिक चेतना प्रारम्भ से ही सक्रिय रही। उनका समाज दर्शन पूर्ण यथार्थवादी रहा। राष्ट्रीयता उनके लिये नारा मात्र नहीं है बल्कि मानवीय संदर्भों में ग्रहण किया गया एक विश्वास है जिसे राष्ट्रीय चेतना का नया स्वरूप प्रगतिशीलता भी कहा जा सकता है। मयंक जी के राष्ट्रीय काव्य में एक

नयी भूमिका देने का संकल्प है। रसों की उत्पत्ति तो उनके काव्य में सहज और स्वाभाविक ढंग से हुयी है। वह नियोजित नहीं है अपितु भावों की सहजता का स्वाभाविक परिणाम है–

"वह बिस्मिल आजाद जिन्होंने, स्वतन्त्रता की इच्छा में,
मरकर अजर अमरता मांगी, मुक्ति न मांगी भिक्षा में,
लाखों लाल हुये न्योछावर, इसी स्वराज्य-परीक्षा में,
उस स्वराज्य की रक्षा में अब
प्राण लुटाने कौन चलेगा।" [72]

मयंक जी के गीतों की एक बड़ी विशिष्टता यह है कि उन्हें पढ़कर कहीं भी नैराश्य का भाव मन में नहीं जागता। उनका काव्य सदैव मन में एक आशा का संचार बनाये रखता है–:

"अब इन्द्रधनुष के रंग भरो,
सूखी-मुरझाई कलियों में,
किरनों के फूल खिलाओ अब,
सुनसान अंधेरी गलियों में,
रोती तकदीरों को बदलो, घायल तस्वीरों को बदलो,
अब गलते हुये आंसुओं को, बदलो जलते अंगारों में।" [73]

ब्रिटिश शासन के प्रति कवि मयंक भी आस्थावान नहीं थे। ब्रिटिश शासन के प्रति एक घृणा का भाव सदैव उनके मन में घुला रहता था–

"निकलो मेरे घर से निकलो,
बड़े किरायेदार।

चले मोल लेने कागज से,

सोने का संसार।" [74]

मयंक जी की प्रसिद्धि उन विप्लवकारी गीतों के कारण भी है जिनमें क्रान्ति की चिंगारियाँ हैं, उद्दीप्त यौवन की पुकार है, सर्वनाश और महाप्रलय का महागर्जन है। प्रलयकारी मेघ–गर्जन का प्रचण्ड घोष और प्रेम की अद्‌भुत पीर इस कवि के लिये उपयुक्त उपमान है। जिसने अपने हृदय के वर्षाजल से गीतों की भाव–भरी गागरों को रस से छलका दिया। आँखों का पानी नहीं वरन् हृदय का रस इनके करुण–मधुर एवं उद्‌दाम गीतों की आत्मा बन गया है। रौद्र रस का एक उदाहरण दृष्टव्य है–

"पानी हैं आग हम हैं,

रण-रंग-राग हम हैं,

पचपन करोड़ फन हैं,

वह शेषनाथ हम हैं,

इस देश की हर नारी, जलती हुयी चिंगारी, *(रौद्र रस)*

हर चन्द्रमुखी तन में, ज्वालामुखी छिपाये।" [75]

मयंक जी के काव्य की प्रमुख विशेषता निश्छल आत्माभिव्यक्ति है। यह निश्छलता ही एक स्वाभाविक परिवेश में उनकी रचनाओं का सबसे बड़ा आकर्षण है। सरलता, संवेद्यता और आत्मीयता की गंगा, यमुना और सरस्वती का संगम उनकी रचनाओं में मिलता है। अतीत के सांस्कृतिक वातावरण और वर्तमान चेतना की समरसता द्वारा जीवन को बेहतर बनाने का सार्थक प्रयत्न उन्हें समकालीन कवियों में श्रेष्ठ बनाता है–

"हर आँसू मेरा मन्दिर है, हर दिल मेरी आरती,

मेरी श्रद्धा हारे थके-थकाए चरन पखारती,

मुझे मिला चरणामृत मिट्टी में पानी में रेत में, *(शान्त रस)*

जहाँ कृषक निशदिन बोते है अपना जीवन खेत में।"[76]

और

"निश्छल रहना ही नमाज है, सच्चाई ही ध्यान है,

जो पूजा स्वीकार उसे है वह केवल ईमान है,

मानव को ठुकराना ही करना उसका अपमान है, (शान्त रस)

पत्थर मत पूजा, पूजो वह मिट्टी जिसमें जान है।"[77]

समसामयिक एवं सामाजिक चेतना सदैव मयंक जी के काव्य में प्रस्फुटित होती रही। उनकी रसपूर्ण भाषा ने काव्य सृजन के प्रत्येक अंग में जैसे प्राण ही फूंक दिये हैं। मयंक जी में हमें छायावादी शैली की कोमल एवं मार्मिक संवेदनाओं के दर्शन होते हैं। उनकी गीत–प्रतिभा अपनी भावप्रधानता, मार्मिकता तथा अप्रतिम संगीत स्वर–प्रवाह से हृदय को प्रभावित किये बिना नहीं रहती। कवि के संवदेनशील हृदय में एक गहरी व्यथा की छाया व्याप्त है जो उनकी रचनाओं में धूप–छाँह की तरह गुथी मिलती है। उनके गीत उनके हृदय की गहरी भावना में ढलकर एक विशेष मार्मिक मार्दव लिये होते हैं। उनके गीतों की मधुर झंकार पाठक के हृदय को भावना में तन्मय तथा रस विभोर कर देती है।

6- काव्य-गुण

भावनानुकूल शब्दयोजना के कारण मयंक जी के काव्य में गुणों की सुन्दर, समुचित योजना हुयी है। छायावादी कवियों ने अधिकतर माधुर्य गुण को ही अपने काव्य का आधार बनाया। इसी भाँति प्रगतिवादी कवियों में ओजगुण की प्रधानता दिखायी देती है किन्तु मयंक जी के काव्य में तीनों काव्य गुणों का सुन्दर तालमेल दिखायी देता है। गीतसृजन के प्रथम चरण में (रूपरागिनी, 1952 ई0) जहाँ माधुर्य एवं प्रसाद गुण की अधिकता दिखायी देती है वहीं दूसरे चरण में (जनता ही अजन्ता है, सन् 1975 ई0) उनके काव्य में ओज गुण ही मुख्यतया दिखायी देता है।

अर्थ की सारगर्भिता, चारूता तथा प्रभावोत्पादकता प्रसाद गुण की विशेषता है। प्रसाद गुण के कारण रचनाओं में अर्थबोध में स्पष्टता परिलक्षित होती है :

प्रसाद गुण

"नित्य असंख्यक तारक खग उड़ आते हैं सुकुमार चरों से
शून्य निशा में कथा तुम्हारी कहते हैं कम्पित अधरों से
आते नित्य विहान-विहग उड़ कर दिनकर के रिण करों से
बिखराते संगीत तुम्हारा कलख के कमनीय स्वरों से
फिर नवीन संचय करने को
उड़ जाते हैं देश तुम्हारे।" [78]

मयंक जी के काव्य में काव्य गुणों का सुन्दर संतुलन दिखायी देता है। काव्य सृजन के प्रथम चरण में जहाँ प्रसाद एवं माधुर्य गुण की प्रधानता है वहीं दूसरे चरण में (रूपरागिनी) (जनता ही अजन्ता है) ओज गुण से रचे बसे काव्य का सृजन ज्यादा दिखायी देता है–

"ओ हिन्द के सिपाही
है शान तेरी शाही,
इतिहास के पन्नों को,
दी तूने नई स्याही,
तूने लहू से सींचा , इस देश का बागीचा
अपने लहू से भरकर तूने दिये जलाये।" [79]

और

"सत्य हारा नहीं आज तक शक्ति से,
शक्ति के दर्प, पशुबल, अहंकार से,

क्रोध-प्रतिशोध जीता नहीं आज तक,

नेह से नीति से प्रीति से प्यार से,

स्नेह के दीप की यह अमर ज्योति है,

यह कटेगी न तलवार की धार से,

सृष्टि को क्यों डराते हो संहार से,

यह अमृत है जलेगा न अंगार से,

क्यों झुकें मौत की शाम के सामने,

सिर झुकाना पड़ेगा परशुराम को,

शान्ति के देवता राम के सामने।" [80]

माधुर्य गुण से युक्त उदाहरण उनके काव्य में जगह–जगह छिटके मिलते हैं–

"मेरी तप्त तृषित धरती पर
किसकी स्नेह सघन तरु छाया
तन्द्रिल पलकों पर जागृत की
किसने सपनों की मधुमाया

मेरे हृदय शलभ से सहसा दीपशिखा अनजान छू गयी।" [81]

मयंक जी के काव्य में माधुर्य एवं प्रसाद का समन्वित रूप उनके काव्य को नया अर्थ–गांभीर्य एवं लालित्य प्रदान करता है–

"निषि सी काली अलकें समेट

ओढ़ा अरुणोदय सा अंचल

मध्यस्थ धवल सरिता तट पर

निकला हँसता रवि–बाल–विमल

उज्जवल जल को प्रतिबिम्बित कर

रुपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु।" [82]

इस प्रकार मयंक जी के काव्य में माधुर्य, प्रसाद एवं ओज का अनूठा समन्वय दिखायी देता है। मयंक जी का सारा काव्य अनुभूति के रस से ओत–प्रोत है। कवि का प्रकृत प्राण–प्रवेग, भाव–सत्यता, अनुभूति की मार्मिकता व गम्भीरता स्वतः गीत की अभिव्यन्जना में एक स्वाभाविक अन्विति प्रतिष्ठित कर देती है।

सन्दर्भ

1. नगेन्द्र, काव्य बिम्ब, पृष्ठ–4
2. मैं दूर भी नहीं हूँ, रूपरागिनी, पृष्ठ–54
3. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–208
4. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200
5. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ– 207
6. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–207
7. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–207
8. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–199
9. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200
10. सन्देश तुम्हारे, रूपरागिनी, पृष्ठ–12
11. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–82
12. वर्मा, रामचन्द्र, प्रमाणिक हिन्दी शब्द कोष, पृष्ठ–87
13. तिलक, बालगंगाधर, श्रीमद् भगवतगीता रहस्य, पृष्ठ–435
14. व्हाइटहेड, ए0एन0, सिम्बालिज्म : इट्स मीनिंग एण्ड इफैक्ट, पृष्ठ–235
15. कुमार, विमल ; सौन्दर्यशास्त्र के तत्व, पृष्ठ–236, 237
16. प्रसाद, जयशंकर; काव्य कला और अन्य निबन्ध, पृष्ठ–36
17. सन्देश तुम्हारे, रूपरागिनी, पृष्ठ–12
18. सन्देश तुम्हारे, रूपरागिनी, पृष्ठ–12
19. मुझको अपना जीवन प्यारा, रूपरागिनी, पृष्ठ–20
20. रात शेष है, जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–42,43
21. रूपसि तेरा, रूपरागिनी, पृष्ठ–38
22. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200
23. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–205
24. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–201
25. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200
26. रूपरागिनी, पृष्ठ–45
27. रूपरागिनी, पृष्ठ–53

28. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–60

29. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–6

30. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–59

31. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–67

32. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–69

33. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–73

34. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–82

35. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–83

36. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–25

37. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–11

38. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–6

39. रूपरागिनी, पृष्ठ–12

40. रूपरागिनी, पृष्ठ–17

41. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–9

42. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–14

43. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–29

44. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–20

45. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–37

46. जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ–43

47. पंत, सुमित्रा नन्दन, पल्लव की भूमिका, पृष्ठ–40

48. रूपरागिनी, पृष्ठ–59

49. रूपरागिनी, पृष्ठ–59

50. रूपरागिनी, पृष्ठ–12

51. रूपरागिनी, पृष्ठ–39

52. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200

53. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–200

54. रूपरागिनी, पृष्ठ–38

55. रूपरागिनी, पृष्ठ–21

56. रूपरागिनी, पृष्ठ—12

57. रूपरागिनी, पृष्ठ—12

58. रूपरागिनी, पृष्ठ—45

59. रूपरागिनी, पृष्ठ—21

60. रूपरागिनी, पृष्ठ—33

61. रूपरागिनी, पृष्ठ—32

62. रूपरागिनी, पृष्ठ—18

63. रूपरागिनी, पृष्ठ—16

64. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ—206

65. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ—206

66. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ—201

67. अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ—200

68. रूपरागिनी, पृष्ठ—39

69. रूपरागिनी, पृष्ठ—35

70. रूपरागिनी, पृष्ठ—41

71. रूपरागिनी, पृष्ठ 40

72. कौन चलेगा, जनता ही अजन्ता है, – पृष्ठ 18

73. 'है शोर यही', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ—71

74. 'निकलो बड़े किरायेदार' जनता ही अजन्ता है, .पृष्ठ—92

75. 'फूलों के हार उनको', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ 23

76. मेरा मनमोहन सांवरिया, जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ—7

77. मेरा मनमोहन सांवरिया– जनता ही अजन्ता है– पृष्ठ 8

78. 'सन्देश तुम्हारे', रूपरागिनी, पृष्ठ—12

79. फूलों के हार उनको, जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ—22

80. 'प्रीति का गीत', जनता ही अजन्ता है, पृष्ठ—26

81. 'प्रीति किसी की प्राण छू गयी', रूपरागिनी, पृष्ठ—35

82. 'रुपसि तेरा सिन्दूर बिन्दु', रूपरागिनी, पृष्ठ—38

अध्याय 6

अध्याय 6
उपसंहार

मयंक जी के साहित्य पर विस्तृत चर्चा के बाद अब हम उनके सृजन वैशिष्ट्य पर चर्चा करेगें। मयंक जी का रचना काल उस समय से प्रारम्भ होता है जब हिन्दी साहित्य मे छायावाद के अन्त की घोषणा हो रही थी, परन्तु उनके प्रारम्भिक काव्य में छायावादी प्रभाव स्पष्ट रूप से देखे जा सकते हैं। निराला, पंत, प्रसाद एवं महादेवी के चित्रात्मक संस्कारों मे उनकी कविता विकसित हुयी। इसीलिए उनके प्रारम्भिक काव्य में हम कल्पनायुक्त माधुर्य, सौन्दर्य की लयमयता और भावनाओं की रंगीनियों के प्रति आकर्षण देखते है, किन्तु यह रूपाकर्षण अल्प समय तक ही रहा और शीघ्र ही वे इस कल्पनालोक से निकलने का उपक्रम करते दिखायी देते हैं। परवर्ती काव्य में वे छायावाद की छाया से निकलकर जीवन की ऊर्जा एवं आलोक के राजपथ पर आने का प्रयत्न करते दिखायी देते हैं। यह विचार बार बार उनके काव्यालोकन के पश्चात् दिखायी देता है कि कविता केवल कल्पना एवं रम्य स्वप्नों की परिपूर्ति नही है। इस विचारणा के अनुरूप ही मंयक जी ने अपनी सहजानुभूतियों को पूरी सच्चाई के साथ निष्कपट भाव से प्रकट करना प्रारम्भ किया।

छायावाद का समय हिन्दी साहित्य में अधिकांशतः 1936 ई0 तक माना गया है। इसके पश्चात् हिन्दी कविता में कुछ समय तक छायावाद की ही रोमांसिकता में डूबी किन्तु छायावादी शाब्दिक–रंगोली, काल्पनिक दुरूहता और अतिशय आत्मपरक कविताओं की अस्पष्टता से मुक्त गीतों का युग आया जिसमें छायावादी आदर्श भावना यथार्थोन्मुखी स्वरूप ग्रहण करने का प्रयत्न कर रही थी। इस युग को स्वर देने वाले कवियों में 'बच्चन', 'अंचल', 'नरेन्द्रशर्मा', 'दिनकर', 'शम्भुनाथ सिंह', 'आर.सी. प्रसाद

सिंह', 'रामावतार अरूण क्षेम', 'रमानाथ अवस्थी' का नाम प्रमुखता से आता है। जिस प्रकार स्थूलवादी दृष्टि की अति द्विवेदी युग के स्थान पर छायावाद के अभ्युदय का कारण बनी थी, वैसे ही अतिशय–सूक्ष्मता छायावाद के पराभव का कारण हुयी। छायावाद के विरोध में हिन्दी मे कवियों के तीन वर्ग मुख्य रूप से मुखर हुये, एक तो वैयक्तिक कविता के नाम से अभिहित स्वर हैः इसकी प्रमुख प्रवृत्तियां थीं– वैयक्तिक अभावो की सहज स्वीकृति, जीवन संघर्ष से पलायन; शरीरी भोग और ऐंद्रियता, ईश्वर के प्रति विरोध की भावना, सक्रिय जीवनी शक्ति का अभाव, समाज से संघर्ष का द्वन्द, सहज और सरल अभिव्यक्ति प्रणाली। इस धारा के कवियों की उपलब्धि है पाठकों के साथ घनिष्ठ सम्बन्ध–स्थापन की। काव्य एवं पाठक में इतना घनिष्ठ एवं समीपी सम्बन्ध पहले नहीं था। पाठकों की रूचियों को अपनी अनुभूति में संश्लिष्ट कर सकने और उस अनुभूति को सरल भाषा में व्यक्त कर देने के कारण ही ये लोकप्रिय रहे हैं। दूसरी तरफ रूप–विधान के आग्रह से मुक्त प्रगतिवादी कविता भी साथ साथ चल रही थी। पूरी तरह से सामाजिक सरोकारों से आबद्ध यह कविता मानव और समाज के आपसी द्वन्द में अपना वजूद तलाश रही थी। इस धारा को स्वर देने वाले कवियों में 'निराला', 'पन्त', 'मुक्तिबोध', 'केदारनाथ अग्रवाल', 'रांगेयराघव', 'शिवमंगल सिंह सुमन', आदि नाम प्रमुख है। तीसरी ओर प्रयोगवादी स्वर था, जिसकी सामाजिक भूमिका का निर्माण द्वितीय विश्व युद्ध के बाद आरम्भ हुआ। पूरी तरह से विज्ञान और मनोविश्लेषण की भावभूमि पर आधारित यह कविता मानव मन में नये सत्यों की खोज में संलग्न थी। हिन्दी कविता की यह धारा फ्रायड, एडलर एवं युंग के मनोविश्लेषणवाद से बहुत प्रभावित थी। फ्रायड ने मानसिक भूमि के तीन स्तर निरूपित किये– पहलाः अचेतन, दूसराः उपचेतन, एवं तीसराः चेतन। उन्होंने काव्य का मूल अचेतन को स्वीकार करते हुये कहा कि मनुष्य की दमित इच्छायें यहीं एकत्र होती हैं। इन्हीं इच्छाओं का अहंनिष्ठ रूप काव्य है। उनके अनुसार दमित

इच्छाओं को पूरा करने का कार्य 'अहं' ही करता है। फ्रायड के ही प्रभाववश हमारी संस्कृति में बहुत दिनों के बाद समाज से वर्जित अंह को स्वीकृति प्राप्त हुयी। "हिन्दी साहित्य में आधुनिकता के विचार के रूप में सबसे पहले 'अहं' को निराला ने स्वीकार किया था।"[1] इस धारा के प्रमुख कवियों में 'अज्ञेय', 'नेमिचन्द्र जैन', 'भारतभूषण अग्रवाल', 'गिरिजा कुमार माथुर', 'प्रभाकर माचवे' आदि नाम प्रमुख है।

हिन्दी साहित्य की उपरोक्त भावभूमि में उदित मयंक जी की राह वादों एवं विवादों से अलग थी। "उनके गीत किसी वाद की सीमा में बंधकर नहीं लिखे गये हैं; क्योंकि जहाँ वाद होता है वहाँ विवाद होता है। एक वाद को दूसरे वाद के तर्को के आधार पर निरस्त किया जा सकता है। इसीलिए वाद का जीवन क्षणिक होता है. . . . . ये रचनायें न कभी समाप्त हो सकती हैं और न इनके मूल्य के कभी न्यूनता ही आ सकती है; जब तक मानव एवं उसकी प्रवृत्तियां है तब तक जीवन में प्रेम, घृणा, क्रोध और उत्साह के लिये स्थान बना रहेगा। मयंक के गीतों की पृष्ठभूमि मानव की शाश्वत प्रवृत्तियों पर आधारित है, जो कभी समाप्त नहीं हो सकती।"[2] मयंक जी की सृजन–प्रतिभा सहज एवं नैसर्गिक थी। गीत लिखना कभी भी उनका ध्येय नही रहा, वह तो उनके हृदय से फूटते थे। प्रारम्भ में उनकी काव्य–प्रतिभा प्रेम एवं सौन्दर्य के प्रतिमानों से प्रेरणा पाती रही परन्तु कालान्तर में उनकी आस्था सामाजिक एवं राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़ गयी। डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' कहते हैं, "मंजुल मंयक ने अपने गीतिकाव्य के परिदृश्य में हिन्दुस्तान को समेट लिया है। वे हिन्दी गीत–काव्य में प्रेमचन्द हैं। उनके गीतों मे गाँवों की गाथायें हैं, खेतों एवं खलिहानों की व्यथायें हैं . . . . . . गीत काव्य में जन संवेदना प्रदान करने वाले गीतकारों में, मंजुल मंयक हिन्दुस्तान के प्रतिनिधि गीतकार हैं। उनके गीतों ने जीवनव्यापी संघर्षो में साझेदारी ली है और विसंगतियों से टकराने के लिये मानव जाति को संवेदना का सामर्थ्य प्रदान किया है। वर्ग–संघर्ष में हमारा प्रिय कवि जनता के साथ

रहा है। एक अनुशासनप्रिय, सुसंस्कृत, चरित्र सम्पन्न राष्ट्र के निर्माण में कवि की सारस्वत साधना गहरी संवेदना के साथ जिन राष्ट्रीय–मानवीय मूल्यों का निर्माण करती रही है उन्हें देखते हुये मुझे आश्चर्य है कि राष्ट्रीय प्रगतिशील काव्यधारा के इतने महत्वपूर्ण कवि पर हिन्दी साहित्य का इतिहास अब तक चुप्पी कैसे साधे है।"[3]

मंयक जी के काव्य में पर्याप्त मात्रा मे विषयों की विविधता मिलती है। उन्होंने जहाँ श्रृंगार के दोनों पहलुओं संयोग एवं वियोग पर मधुर गीतों की रचना की है वहीं सामाजिक एवं राष्ट्रीय सरोकारों से जुड़े उनके विद्रोही–गीत उनकी प्रमुख पहचान बने हैं। उनके विषय काल्पनिकता पर आधारित नहीं है बल्कि यथार्थ के धरातल पर टिके हुये हैं। उन्होने समकालीन विषयों एवं समस्याओं पर खूब गीत लिखे हैं। समस्या चाहे गरीबी की हो, शोषण की हो या भ्रष्टाचार की; या चीनी आक्रमण जैसे राष्ट्रीय संकट हो, मयंक जी ने हृदय एवं मस्तिष्क को हिला देने वाले गीत रचे हैं। मयंक जी की मानव एवं भौतिक जीवन में गहरी आस्था है, उनके विषय कभी भी जटिल एवं आध्यात्मिक नहीं रहे। वे अपने गीतों में जनसंवेदना को समझने, पढ़ने और उतार देने वाले गायक रहे हैं। मंयक जी के गीतों मे नारी, श्रद्धा एवं शक्ति का विषय बनी है। समाज में नारी की दुर्बल स्थिति के वे निर्मम आलोचक रहे हैं और अपने गीतों में उन्होंने स्वयं नारी को अपना नीति –नियन्ता बनने का परामर्श दिया है। मयंक जी के राष्ट्रीय चेतना से अनुप्राणित गीत भी बेजोड़ हैं। मयंक जी के गीतों में राष्ट्रीय चेतना से प्रेरित गीतों को दो मुख्य आयामों मे देखा जा सकता है। पहला, भारतीय जनमानस को परतंत्रता का बोध करा स्वतन्त्रता प्राप्ति हेतु प्रेरित करने सम्बन्धी गीत; दूसरा, स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद राष्ट्रव्यापी समस्याओं के प्रति जनजागरण सम्बन्धी गीत। उनके गीतों में एक सैनिक का पराक्रम, सन्त का साधुत्व और कलाकार का कौशल तीनों एक साथ विद्यमान हैं। "मंजुल मयंक के गीत सैनिक हैं सन्त हैं कलाकार हैं। . . . . . मंजुल मयंक के गीत जिस प्रकार

अनोखे सैनिक हैं, उसी प्रकार के सन्त भी हैं। इतिहास ने न तो ऐसे सैनिकत्व के दर्शन किये हैं और न ऐसे सन्तत्व के। प्रथम तो सर्वदा से सैनिक और संत परस्पर विरोधी प्राणी रहे हैं–प्रथम भौतिकता का साधक रहा है, द्वितीय आध्यात्मिकता का यदि कोई कहे कि अमुक व्यक्ति सैनिक भी है सन्त भी तो शायद ही कोई स्वीकार करे कि यह संभव हो सकता है किन्तु मंजुल मंयक में यह एक नग्न यथार्थ है कि उनके गीत सैनिक भी हैं सन्त भी, इतना ही नहीं बल्कि विलक्षण सन्त संसार के परम्परागत सन्त अपनी साधना की परिणति मुक्ति में चाहते रहें हैं किन्तु मंजुल मंयक के सन्त अपनी साधना की परिणति लोकमुक्ति में चाहते हैं। वे चाहते हैं कि चारों ओर हिलोरें लेता विसाद का सागर सूख जाये। धुलहे होठों पर मुस्कान की अरुणिमा बिखर जाय। फलतः मंजुल मंयक सुन्दरम् की उपासना का प्रश्रम लेते हैं। उनका अनुभव है कि सुन्दरम् ही साकार सत्यम् है तथा सत्यम ही निराकार सुन्दरम्। उनका अडिग विश्वास है, जो प्रत्यक्ष अनुभूति के उदर से उत्पन्न हुआ है, कि सुन्दरम प्रेम का खाद्य है तथा प्रेम आत्मा का मानसी रूपान्तर है। यही कारण है मंजुल मयंक के गीत कर्मणा तो सैनिक है, वृत्या सन्त हैं किन्तु दृष्ट्या कलाकार है।"[4]

हृदय की निर्मलता, गंभीरता, विनम्रता एवं शालीनता यह विशेषतायें मंयक जी के व्यक्तित्व की खासियत है। उनके व्यक्तित्व का निर्माण कोमल भावों से हुआ था और उनका यही व्यक्तित्व उनके गीतों से भी प्रकट होता है। उन्होंने अपने गीतो मे भावनाओं का निर्माण नही किया बल्कि भाव प्रवाह में उनके गीतों का सृजन हुआ, इसीलिए उनके गीतों में कृत्रिमता नहीं बल्कि सहजता एवं स्वाभाविकता के दर्शन होते हैं। यदि प्रारम्भिक समय के प्रेम एवं सौन्दर्य सम्बन्धी कुछ गीतों को छोड़ दे तो मयंक जी का अधिकांश काव्य सामान्य जनमानस की सामाजिक एवं राष्ट्रीय आकांक्षाओं को ही उजागर करने वाला रहा है यद्यपि उनके प्रेम एवं सौन्दर्यमूलक गीत भी गुणक्ता एवं प्रभाव की दृष्टि से

बेजोड़ है। "आज के हिन्दुस्तान की जनता के नाम गीत लिखने वाले, हिन्दुस्तान में गीत लिखने वाले, मंजुल मंयक अपने ढंग के अकेले ही इस रोशनी को जलाये चल रहे हैं . . . . . . बुन्देलखण्ड की वेतवा और यमुना की हम्मीरी धाराओं से उद्भूत मंजुल मंयक और उनके गीत हिन्दुस्तान की धूल में समाकर कृषकों की आँखों के आंसुओं में ढुलककर धरती में एक नये सवेरे के लिए याद किये जायेगें। ये गीत मटमैले, धुमैले किसानों के बेटों और बेटियों द्वारा गाये जायेगें। इन गीतों को जयदेव की मालिन किसी राजा की फूलबगीया में नही गायेगी, ये गीत खेतों और खलिहानों में, अनन्त अम्बर के तारों के बीच गाये जायेंगें, एक नये सांस्कृतिक सवेरे के लिये।"[5]

सहजता, स्वाभाविकता एवं नैसर्गिकता मयंक जी के गीतों का प्राणतत्व है, वे गहन अनुभूति धर्मा कवि थे इसीलिए उनका समस्त काव्य गीतों में ही है, कोई प्रबन्ध या महाकाव्य वे नहीं लिख सके। प्रेम एवं सौन्दर्य सम्बन्धी गीतों में मयंक जी की प्रेमानुभूति में गहन प्रेम–वेदना का गांभीर्य भरा हुआ है, उनके गीत करुणा से ओत–प्रोत हैं एवं उनमें नैसर्गिक भावों की सरिता बह रही है, उनक गीत विरह की आध्यात्मिकता से परिपूर्ण है तथा उनमें भक्ति भावना की तन्मयता भरी हुयी है। मयंक जी का सृजन छायावादोत्तर काल का है एवं विवेच्य समय में प्रेम सम्बन्धी छायावादी मान्यतायें एवं अभिव्यक्तियां इस काल में एक–एक कर दम तोड़ रही थी। इस काल में प्रेम का स्वरूप मर्यादाविहीन तथा वासनामय हो चला था। नरेन्द्र, भगवतीचरण वर्मा, बच्चन, अंचल आदि कवियों ने ऐसी गीतियों की सृष्टि की जिनसे कामुकता की गंध आने लगी परन्तु अपने समय में आ रहे इस परिवर्तन के विपरीत मयंक जी का मौन व्यक्तित्व उपरोक्त विसंगतियों से मुक्त प्रेमानुभूति सम्बन्धी उत्कृष्ट गीतों की रचना में संलग्न था। उनके गीतों में सहजता तथा वैयक्तिक साधना की प्रबलता है। उनके गीतों में मूक वेदना एवं एकाकी पीड़ा का अजस्र स्रोत प्रवाहित हो रहा है। मयंक जी के प्रेमगीतों में मानवीय कोमल भावनाओं की मधुर

अभिव्यंजना हुयी है और विरह की मूक वेदना अथवा प्रेम की मूक पीड़ा अत्यन्त मार्मिकता के साथ अभिव्यक्त हुयी है। उनके गीत पूर्णतया सहृदय संवेद्य हैं, अखण्ड चेतना से संपृक्त हैं। अनुभूति की निश्चलता से ओत–प्रोत हैं और आत्म निवेदन के अलौकिक रस से परिपूर्ण है।

मयंक जी के काव्य में प्रकृति के सुन्दर और मनोहर चित्र मिलते हैं, उनके गीतों में विविधरूपा प्रकृति को अनुभूतिजन्य स्तर पर घटित होता देखा जा सकता है। प्रकृति कवि के लिए मात्र शब्द कौशल का व्यापार नहीं वरन् उनकी जीवन्त अनुभूतियों के विस्तार का आधार है। वे प्रकृति को एक संवेदनशील प्रेमी की तरह प्यार करते हैं। उनका प्रकृति के प्रति यह दृष्टिकोण मौलिक एवं नवीन है। प्रकृति के माध्यम से अपनी वृत्ति, रुचि, संवेग, स्नेह आदि का संश्लेषण और प्रकाशन उनके उत्कृष्ट सौन्दर्य बोध का परिणाम है। मयंक जी की सौन्दर्याभिव्यक्ति में छायावादी सौन्दर्यांकन का पर्याप्त प्रभाव पड़ा है। वे प्रकृति के माध्यम से नारी सौन्दर्य के आकर्षक एवं मनहर रूप का चित्रण करने में पूर्ण सफल हुये हैं।

गीतों के क्षेत्र में मयंक जी का बड़ा देय एवं बड़ी पहचान उनके सामाजिक एवं राष्ट्रीय चेतना सम्पन्न गीतों के कारण है। विवेच्य विषय में उनके गीतों ने मानवीय मूल्यों को नये आयाम दिये तथाकथित विकास के कुण्ड में डूबते–उतराते मानव को सामाजिक एवं सांस्कृतिक विकास के सही प्रतिमानों से परिचित कराने की चेष्टा की है। अपने गीतों के माध्यम से कवि ने उन विकास प्रतिमानों को बचाने का अमिट प्रयास किया है जो हजारों वर्षों के शोध का परिणाम है। उन्होने अपने गीतों में भौतिक विकास के बजाय आत्मिक विकास को मुख्य धारा में रखा है। उनके गीतों में शोषण के विरूद्ध विद्रोही स्वर देखने योग्य हैं। इस परिप्रेक्ष्य में अवलोकनोपरान्त वे सही मायनो में प्रगतिशीलता के समर्थक सिद्ध होते हैं। उनके गीतों में मानव प्रेम की भावना प्रबलतम एवं सामाजिक

विषमता के प्रति विक्षोभ है। देश की तत्कालीन परिस्थितियों से असंतुष्ट मयंक जी आर्थिक एवं सामाजिक स्वतन्त्रता को ही सर्वोपरि मानते हैं एवं समस्त मानव जाति की समता को ही सच्ची स्वतन्त्रता मानते हैं। सामाजिक समता तथा सामाजिक परिवर्तन का संकेत देने वाली कविताओं मे उनका मानव प्रेम अभिव्यक्त हुआ है।

मयंक जी के गीतों मे देश प्रेम भी सर्वथा नये रूपों में परिभाषित है। राष्ट्रीयता उनके लिये मात्र नारा नहीं है बल्कि मानवीय संदर्भो में ग्रहण किया गया एक विश्वास है जिसे राष्ट्रीय चेतना का नया स्वरूप प्रगतिशीलता कहा जा सकता है। उनके गीतों में राष्ट्रीय नव निर्माण का आह्वान एवं नव जागरण का संदेश है। मयंक जी के राष्ट्रीय काव्य में एक नयी भूमिका देने का संकल्प है। महापुरूषों के गौरव गान, स्वतंत्रता प्राप्ति के लिए बलिदान एवं उत्सर्ग की भावना उनके काव्य में प्रबलता से प्रकट हुयी है। राष्ट्रीय स्वतंत्रता, सामाजिक न्याय, समानता एवं व्यक्ति–स्वातन्त्रय की भावना का उद्‌घोष कवि ने क्रान्तिकारी स्वरों में किया है। विदेशी शाषकों से मोर्चा लेने का संकल्प एवं देश की स्थिति को अनुकूलता प्रदान करने का आग्रह भी उनकी कविताओं में है।

मयंक जी की काव्य चेतना हिन्दी काव्य की विविध प्रवृत्तियों की लहरों के साथ न उठी, न गिरी। उसका एक मूल उत्स रहा है। हिन्दी के विविध वादों से अलग उसकी एक स्वतन्त्र सत्ता है। मयंक जी ने स्वतन्त्रता प्राप्ति के बाद जैसे सामाजिक एवं प्रगतिशील गीतों की रचना की है, उन्हें देखते हुये ऐसा प्रतीत होता है जैसे वे काव्य से आनन्द प्राप्त करने के लक्ष्य को दोयम दर्जे का स्वीकार करते थे और जनजागरूकता को ही इसका प्रधान लक्ष्य मानने लगे थे। डा० यतीन्द्र तिवारी लिखते है, "मयंक जी की राष्ट्रीय रचनायें इस तथ्य का प्रमाण है कि उन्होंने अपनी व्यक्तिगत भावनाओं से अधिक राष्ट्र की समष्टिगत भावनाओं को मूर्तिमान करने का सतत् प्रयास किया है। वस्तुतः मयंक जी ओज, पौरूष, सौन्दर्य एवं प्रेम के कवि हैं, यदि उन्हें बुन्देलखण्ड का दिनकर कहा

जाये तो अतिशयोक्ति न होगी।"[6]

मयंक जी का काव्य भाव और कलागत सौन्दर्य से परिपूर्ण है। उन्होने अपनी अत्माभिव्यक्ति प्रगीतों के माध्यम से की। उनकी कविता की एक अलग ही विशिष्टता है। भावों की तीव्र अनुभूतियों की अभिव्यक्ति में वे मौलिकता लिये हुयें हैं। मयंक जी की मूलभूत विशेषता भावना की तीव्रता है जो उनके काव्य को मौलिकता प्रदान करती है। कवि की अनुभूति जितनी गहरी है, उनकी भाषा भी उतनी ही प्रभावोत्पादक है। उन्होने परम्परागत भाषा–शब्दों, बिम्बों एवं प्रतीकों के साथ–साथ नवीन काव्य शैली का भी अनुसरण किया है। उनकी भाषा में नवीन व्यंजकता, संगीतात्मकता और चित्रात्मकता का समावेश हुआ है। भाषा खड़ी बोली (हिन्दी) है। उनके काव्य में भिन्न भिन्न भाषाओं के विविध विविध शब्द प्रयुक्त हुये हैं जिससे उनके गीतों में स्वाभाविकता, गतिशीलता एवं सजीवता आ गयी है। उन्होने अपनी भावनाओं की संप्रेषणीयता के लिये सभी प्रचलित भाषाओं के शब्दों को निःसंकोच अपनाया है। साथ ही लोकभाषा की भी उन्होनें उपेक्षा नहीं की। यही कारण है कि भाषा उनके काव्य को सरसता, सरलता एवं मधुरता प्रदान करती है तथा काव्य सौन्दर्य में वृद्धि करते हुये स्वाभाविक गति प्रदान करती है। प्रो० राम स्वरूप खरे के अनुसार, "आपकी भाषा में चम्बल और बेतना की सी प्रखरता नहीं अपितु पुण्यतोया भागीरथी की गुरू गंभीर मंथरता है, जिसमें अर्थ गांभीर्य की अथाह जलराशि लोक कल्याण की भाव भूमि पर प्रवाहित होती है।"[7]

कवि ने अपने काव्य को संवारने का प्रयास कभी नहीं किया। न ही उसे कलात्मक रूप देने के लिये किसी विशिष्ट शैली का ही उपयोग किया। उनके गीतों में भावो को उसी प्रकार अभिव्यक्ति दी जैसे वे उनके मन में उठे।

मयंक जी ने विषयानुसार ही भाषा का प्रयोग किया है। नारी अथवा प्रकृति सौन्दर्य के चित्रण में जहाँ सुकोमल, सरस भाषा का प्रयोग किया है वहीं सामाजिक तथा राष्ट्रीय

चेतना से अनुप्राणित काव्य में आवेगों से युक्त ओजस्वी भाषा प्रयुक्त हुयी है। उनके काव्य में छायावादी ऋृजुता तथा प्रगतिवादी दृढ़ता समान रूप से प्रकट हयी है।

वस्तुतः मयंक जी की भाषा शैली प्रांजल एवं प्रवाहमयी है। उनके गीतात्मक काव्य में यथेष्ट तारल्य और अन्विति की उष्मा है। उनकी शब्दानुभूति में सच्चाई है और अभिव्यक्ति में स्पष्टता के साथ साथ सहज संकेतात्मकता का आकर्षक योग है। उनकी भाषा में न तो संस्कृत का पाण्डित्य है और न उर्दू का आधिक्य। भाषा का सहज, अयत्न साध्य रूप ही उनके काव्य में उपलब्ध होता है। भिन्न भिन्न भाषाओं से निःसंकोच शब्द ग्रहण उनकी उदार एवं गुण ग्राही वृत्ति का परिचायक है। कमोवेश भाषा एवं शैली के जैसी ही स्थिति उनके शिल्प विधान में भी है। बिम्ब, प्रतीक एवं रस तथा छन्द अपनी सहजता के साथ ही उनके गीतो में समाविष्ट हुये हैं। किसी का भी सयत्न एवं सप्रयास प्रयोग उनके गीतों में नहीं दिखायी देता है।

इस प्रकार मयंक जी का मूल्यांकन नैसर्गिक प्रतिभा संपन्न ऐसे कवि के रूप में किया जा सकता है, गीत जिसने बनाये नहीं है वरन् गीत जिसके ह्रदय से फूटते थे। मयंक जी का उपयुक्त मूल्यांकन करते हुये डा० चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित 'ललित' कहते हैं, " यदि मूल्यांकन के घिसे पिटे मानदण्ड छोड़कर नये मानक तैयार किये जाय और सरलता को आदर्श कविता का मापदण्ड माना जाय तो मंजुल मयंक हिन्दी के महानतम गीतकार सिद्ध होगें। भाषा को संप्रेषण की सामाजिक इकाई से, सृजनात्मक प्रतिभा को संवेदनशील दृष्टि सम्पन्नता प्रदान करने, सौन्दर्य के भ्रममूलक नये आधारमानों की स्थापना के कारण उर्दू रचना शैली गज़ल को हिन्दी गीत के फार्म में ढालकर हिन्दुस्तानी रचना के कारण, गीत को जनवादी दृष्टि प्रदान करने के कारण वे हिन्दी गीत काव्य की सर्वोच्च विभूति भी हैं। ऊँची–ऊँची संवेदनात्मक दलीलों से साहित्य का कलेवर बढ़ता जा रहा है, निराला जैसी पर्वतीय ऊँचाई और कहाँ है? नागार्जुन जैसी दो टूक कहने की

सच्चाई और कहाँ है? मंजुल मयंक जैसी संवेदनात्मक गहराई और कहाँ है?..................
'अज्ञेय' विशिष्टता के कारण और 'केदार' कलात्मकता के कारण एकेडिमिक हो गये हैं, पर मंजुल मयंक को सच्चे अर्थो में जनकवि होने का गौरव प्राप्त है। भले ही वह एकेडिमिक न हो पाये हों।"[8]

सन्दर्भ

1. पाण्डेय, कमला प्रसाद, डॉ0 – छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, पृष्ठ–234

2. पाण्डेय, मणीन्द्र नाथ – मयंक और उनका गीतकाव्य मंजुल मयंक : अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–60

3. 'ललित', चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित – मंजुल मयंक : आधुनिक हिन्दी गीतकाव्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि, मंजुल मयंक अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–40

4. निगम, रामभजन – एक गीत और गाओ मंजुल मयंक : अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–46

5. 'ललित', चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित – मंजुल मयंक : आधुनिक हिन्दी गीतकाव्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि, मंजुल मयंक अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–44

6. तिवारी, यतीन्द्र, डॉ0 – बुन्देलखण्ड दिनकर : मंजुल मयंक मंजुल मयंक अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–68

7. खरे, रामस्वरूप, प्रो0 – बुन्देलखण्ड के आधुनिक हिन्दी कवि 'श्री मंजुल मयंक' मंजुल मयंक अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–64

8. 'ललित', चन्द्रिका प्रसाद दीक्षित – मंजुल मयंक : आधुनिक हिन्दी गीतकाव्य की सर्वोत्कृष्ट उपलब्धि, मंजुल मयंक अभिनन्दन ग्रन्थ, पृष्ठ–45

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

सन्दर्भ ग्रन्थ सूची

मौलिक ग्रन्थ

मंजुल मयंक – रूपरागिनी
कालिन्दी प्रकाशन, हमीरपुर, 1952 ई0।

मंजुल मयंक – तन–मन की भाँवरे
विद्या मन्दिर साहित्य संसद, हमीरपुर, 1962 ई0।

मंजुल मयंक – जनता ही अजन्ता है
अजन्ता प्रकाशन, हमीरपुर, 1975 ई0

सृजन संकल्प द्वारा सम्पादित – मंजुल मयंक अभिनन्दन ग्रन्थ
जनवरी 2003 ई0।

सहायक ग्रन्थ

अग्रवाल, ओमप्रकाश – हिन्दी गीतकाव्य
साहित्य भवन, प्रयाग, वि0सं0, 2002।

अरोड़ा किरणबाला – साठोत्तर हिन्दी उपन्यासों में नारी,
अन्नपूर्णा प्रकाशन, कानपुर–1990 ई0।

कुमार, कान्ति – नयी कविता,
मध्य प्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी,
भोपाल, 1972 ई0।

कुलश्रेष्ठ, मधुरेश नन्दन – स्वाभाविकता एवं आधुनिक हिन्दी काव्य
पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1976 ई0।

किशोर, आशा – आधुनिक हिन्दी गीतिकाव्य का स्वरूप एवं विकास
प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1971 ई0।

गुप्त, गणपतिचन्द्र – हिन्दी साहित्य का वैज्ञानिक इतिहास
लोकभारती प्रकाशन, 1998 ई0।

गुप्त, जगदीश – नयी कविता; स्वरूप और समस्यायें
भारतीय ज्ञानपीठ प्रकाशन, 1969 ई0।

गुप्ता, मंजु – आधुनिक गीतिकाव्य का शिल्प विधान
मीनाक्षी प्रकाशन, मेरठ, दिल्ली, 1974 ई0।

गुप्ता, सुधा – छायावादोत्तर काव्य में शब्दार्थ का स्वरूप
बाफना प्रकाशन, जयपुर, 1972 ई0।

गौतम, प्रेम प्रकाश – आधुनिक कविता की प्रवृत्तियां एवं वर्णन शैली,
सरस्वती पुस्तक सदन, आगरा, 1972 ई0।

चतुर्वेदी, रामस्वरूप – हिन्दी साहित्य और संवेदना का विकास
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1986 ई0।

चौहान, प्रतापसिंह – हिन्दी कविता और अरविन्द दर्शन
युगवाणी प्रकाशन, 1965 ई0।

जोशी, चण्डीप्रसाद – हिन्दी उपन्यास; समाजशास्त्रीय विवेचन
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1962 ई0।

झाला, दुर्गाप्रसाद – प्रगतिशील हिन्दी कविता
अभिनव प्रकाशन, कानपुर, 1967 ई0।

टंडन, प्रताप नारायण – हिन्दी साहित्य का प्रवृत्तिगत इतिहास
(खण्ड–1 पद्यभाग)
विवेक प्रकाशन, लखनऊ, 1968 ई0।

तिवारी, सच्चिदानन्द – आधुनिक हिन्दी कविता में गीति–तत्व
हिन्दी साहित्य सम्मेलन, प्रयाग, 1946 ई0।

त्रिपाठी, जगदीश नारायण – आधुनिक हिन्दी कविता में अलंकार विधान
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1972 ई0।

दास, श्याम सुन्दर – साहित्यालोचन
इंडियन प्रेस (पब्लि0) प्रा0लि0,प्रयाग, 1967 ई0।

देवराज – छायावाद; उत्थान पतन पुनर्मल्यांकन
कल्पकार प्रकाशन, लखनऊ, 1975 ई0।

द्विवेदी, रामेश्वर प्रसाद – हिन्दी गीतिकाव्य
आराधना प्रकाशन, कानपुर, 1982 ई0।

द्विवेदी, हजारी प्रसाद एवं ; अन्य द्वारा सम्पादित – हिन्दी साहित्य (तृतीय खण्ड)
भारतीय हिन्दी परिषद, प्रयाग, 1969 ई0।

दुबे, शकुन्तला – काव्य रूपों के मूल स्रोत एवं उनका विकास
वाराणसी हिन्दी प्र0 पु0, 1958 ई0।

नगेन्द – हिन्दी साहित्य का इतिहास
मयूर पेपर बैक्स, नोएडा, 1994 ई0।

नगेन्द्र – आधुनिक हिन्दी कविता की मुख्य प्रवृत्तियाँ,
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली–1966 ई0।

पाण्डेय, अरविन्द – हिन्दी के प्रमुख कवि–रचना और शिल्प
अनुभव प्रकाशन, कानपुर 1, 1986 ई0।

पाण्डेय, कमला प्रसाद – छायावादोत्तर हिन्दी काव्य की सामाजिक और सांस्कृतिक पृष्ठभूमि
रचना प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972 ई0।

पाण्डेय, रामखिलावान – गीतिकाव्य,
काशी ज्ञान मण्डल, काशी, 2004 विसं0।

पाण्डेय, श्रीनिवास – आधुनिक कविता के बदलते प्रतिमान
आशुतोष प्रकाशन, वाराणसी, 1981 ई0।

'प्रवासी', लालधर त्रिपाठी – गीतिकाव्य का विकास
प्रचारिणी सभा, वाराणसी, 1961।

प्रसाद, सिद्धेश्वर – छायावादोत्तर काव्य
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1966 ई0।

प्रेमशकर – हिन्दी स्वच्छन्दतावादी काव्य
मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, भोपाल, 1974 ई0।

32. प्रियदर्शिनी, सुषमा – हिन्दी उपन्यास
राधाकृष्ण प्रकाशन, दिल्ली, 1972 ई0

बदरीदास – हिन्दी उपन्यासः पृष्ठभूमि और परम्परा
ग्रन्थम, कानपुर, 1966।

भाटी, देशराज सिंह – समकालीन हिन्दी कविता
साहित्य प्रकाशन मन्दिर, ग्वालियर,1972 ई0।

मधुरेश – हिन्दी उपन्यास का विकास
सुमित प्रकाशन, इलाहाबाद, 1998 ई0।

माथुर, गिरिजा कुमार – नयी कविताः सीमायें और सम्भावनायें
नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली, 1973 ई0।

'मानव' विश्वम्भर – हिन्दी साहित्य का सर्वेक्षण (काव्य–खण्ड)
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1979।

मिश्र, शिवकुमार – नया हिन्दी काव्य
अनुसंधान प्रकाशन, कानपुर, 1962 ई0

मिश्र, सरयूप्रसाद – आधुनिक हिन्दी कविता में व्यक्तित्व अंकन
पुस्तक संस्थान, कानपुर, 1977 ई0।

'रजनीश', गोविन्द – स्वातन्त्रयोत्तर हिन्दी कविता
मंगल प्रकाशन, जयपुर, 1976 ई0।

वर्मा, रामकुमार – हिन्दी साहित्य का आलोचनात्मक इतिहास
प्रचारिणी सभा, इलाहाबाद,1958।

वार्ष्णेय, लक्ष्मीसागर – हिन्दी साहित्य का इतिहास
लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1991 ई0।

शुक्ल, केसरी नारायण – आधुनिक काव्यधारा,
नन्दकिशोर एण्ड सन्स,वाराणसी–1961 ई0।

सक्सेना, उषा – हिन्दी उपन्यासों का शिल्पगत विकास
शोध साहित्य प्रकाशन, इलाहाबाद, 1972।

सक्सेना, द्वारिका प्रसाद – हिन्दी के आधुनिक प्रतिनिधि कवि
विनोद पुस्तक मन्दिर, आगरा, 1990 ई0।

सिंह, कुँवरपाल – हिन्दी उपन्यास, सामाजिक चेतना
पाण्डुलिपि प्रकाशन, दिल्ली, 1976 ई0।

सिंह, नामवर — आधुनिक साहित्य की प्रवृत्तियाँ, लोकभारती प्रकाशन, इलाहाबाद, 1995 ई0।

सिंह, बलबीर 'रत्न' — हिन्दी की छायावादी कविता का कला विधान नेशनल पब्लिशिंग हाउस, दिल्ली,1964 ई0।

'हंस', कृष्णलाल — प्रगतिशील काव्य साहित्य मध्यप्रदेश हिन्दी ग्रन्थ अकादमी, 1971 ई0।

श्रीवास्तव, जगदीश नारायण — समकालीन कविता पर एक बहस चित्रलेखा प्रकाशन, इलाहाबाद, 1978 ई0।